



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सामाधिक सूत्र

१—नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयस्तिणं । णमो
उपज्ञायाणं । णमो लोग सब्बसाहूणं ।

एसो पंच णमुक्कारो, सब्बपावप्पणासणो ।

मंगलाण च सब्बवेमि, पढमं हवउ मंगलं ॥ १ ॥

(भगवती सूत्र मङ्गलाचरण) (कल्पसूत्र मङ्गलाचरण)

२—गुरुवन्दना-तिक्ष्वुत्तो का पाठ ।

तिक्ष्वुत्तो आयाहिणं पवाहिणं (करेमि) वंदामि णमंसामि
सन्तकारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेऽयं पञ्जुवासामि +
मत्यष्टण वंदामि । (रायप्रसेणी सूत्र ८)

३—इरियावहियं (इच्छाकारेण) का पाठ

इच्छाकारेण संदिसह भगवं ! इरियावहियं पटिष्कमामि, इच्छं
के उच्छामि पडिष्कमित्तं इरियावहियाण विराणाम गमणागमणे.

+ ग्रन्थप्रसेणी गूढ में 'भाषण वदामि' यह पाठ नहीं है । किन्तु प्रम्परा की
पारणा ओर प्रसिद्ध परिपाठी के अनुसार यह पाठ यहाँ दिया गया है ।

के 'उच्छामि' में मिलाया गया है ।

पाणककमणे, वीयककमणे, हरियककमणे, ओसा उत्तिग पणग दग
मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एंगिदिया, वेङ्डिया,
तेङ्डिया, चडरिदिया, पंचिदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया,
संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उहविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया,
जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुष्कडं ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ५७२)

४—तस्स उत्तरी का पाठ

तस्स उत्तरीकरणेण, पायच्छ्रुत्तकरणेण, विसोहिकरणेण,
विसळीकरणेण, पावाणं कम्माण निघायणद्वाए ठामि काउस्सगं ।
अण्णत्थ ऊसमिएण, नीससिएण, स्वासिएण, छीएण, जंभाइएण,
उड्डुएण, वायनिसगेण, भमलीए, पित्तमुच्छ्वाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं,
सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिहिसंचालेहिं, एवमाडएहिं आगारेहिं
अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो, जाव अरिहंताणं भगवंताणं
णमुक्कारेण न पारेमि ताव कायं ठाणेण मोणेण माणेण अप्पाणं
बोसिरामि ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ७७८)

५—लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।

अरिहंते कित्तडसं, चउबीसंपि केवली ॥ १ ॥

उसभमजियं च वन्दे, संभवमभिणंदणं च सुमडं च ।

पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥ २ ॥

सुविहिं च पुफ्फदंतं, सीयलसिज्जंसवासुपुञ्जं च ।

विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संति च चंदामि ॥ ३ ॥

कुर्युं अरं च महि वंदे, मुणिसुव्वयं नभि जिणं च ।
 वंदामि रिदुनेमि, पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४ ॥
 एवं मा अभिथुआ, विहूयस्यमला पहीणजरमरणा ।
 चउवीसंपि जिणवरा, तित्ययरा मे पसीयंतु ॥ ५ ॥
 कित्तियवंदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
 आरुगदोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥ ६ ॥
 चंदेसु निम्मलयरा, आडच्चेसु अहियं पयासयरा ।
 सागरवरांभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥ ७ ॥

(हरिमद्रीयावश्यक पृ० ४६३-५०६)

६—करेमि भंते का पाठ

करेमि भते ! मामाइयं, सावज्जं, जोगं पच्चमवामि जावनियमं
 पञ्जुवासामि, दुविहं तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा
 वयसा कायसा तस्स भंते । पडिमकमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं
 वोसिरामि ॥ (हरिमद्रीयावश्यक पृ० ४५४)

७—णमोत्थुणं का पाठ

णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आडगराणं तित्ययराणं
 भग्यसंकुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं
 पुरिसवरगंघहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहिआणं लोगर्द्धवाणं
 लोगपज्जोअगराणं अभयदयाणं चकवुदयाणं भगदयाणं सरणदयाणं
 जीवदयाणं वोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं
 धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवटीणं दीवो ताण सरण
 गढ़ पट्टा अप्पहिह्यवरजाणदंसणधराणं विअट्टुउमाणं जिणाणं

जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाण वोहयाण मुक्ताणं मोअगाण,
सब्बण्णूणं, सब्बदरिसीण, सिवमयल मरुअ मणंत मक्खय मव्वावाह
मपुणराविन्ति सिद्धिगड्नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं
जिअभयाण ॥ (ओपातिक सूत्र १२) (कल्पसूत्र शक्तस्तव)

८—सामायिक पारने का पाठ

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अष्टयारा जाणियव्वा न
समायरियव्वा, तंजहा ते आलोड' मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे,
कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्टि-
यस्स करणया तस्स मिच्छामि दुष्कर्डं ॥ (हरिभद्रीयावश्यक पृ० ८३१)

सामाइयं सम्मं काएण न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न
किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स
मिच्छामि दुष्कर्डं ।

सामायिक मे दस मन के, दस वचन के, वारह काया के इन कुल
वत्तीस दोयों में से कोई दोप लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुष्कर्डं ।

सामायिक मे क्षी स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, इन चार
कथाओं मे से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छामि दुष्कर्डं ।

सामायिक मे आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा,
इन चार संज्ञाओं मे से किसी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स
मिच्छामि दुष्कर्डं ।

सामायिक मे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते
अजानते मन वचन काया से कोई दोप लगा हो तो तस्स मिच्छामि
दुष्कर्डं ।

क्षी श्राविकाए स्त्री कथा के स्यान पर पुर्ख कथा कहें ।

सामायिक ब्रत विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुष्कर्दं।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा, अनुस्वार, पट, अक्षर, हस्त, दीर्घ, न्यूनाधिक, विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुष्कर्दं।

सामायिक लेने की विधि

सर्व प्रथम स्थान, आसन, पूँजनी, मुखबस्त्रिका आदि की पड़िले-हणा करना। फिर यत्रा पूर्वक स्थान पूँज कर आसन विछाना। बाद में आसन छोड़ कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह कर के दोनों हाथ लोड़ कर पंचाग नमा कर 'तिक्तुत्तो' के पाठ से तीन बार विधि पूर्वक बंदना करना और श्री सीमंधर स्वामी या अपने धर्मांचार्यजी (गुरु-देव) की आज्ञा लेकर 'नमस्कार मंत्र', 'उच्छ्रा कारेण' और 'तस्सउत्तरी' का पाठ बोल कर काउस्सगा करना। काउस्सगा में 'उच्छ्राकारेण' का पाठ मन में कहना। पाठ के अन्त में 'तस्स मिच्छामि दुष्कर्दं' के स्थान पर 'तस्स आलोड़' कहना और 'णमो अरिहंताणं' फहर कर काउस्सगा पारना। बादमें 'नमस्कार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' (काउस्सगा में आत्मध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान न ध्याया हो, काउस्सगा में मन बचन काया चलित हुए हों तो तस्म मिच्छामि दुष्कर्दं) और 'लोगम' का पाठ फहना। फिर 'करेमि भन्ते' के पाठ से सामायिक लेना। 'करेमि भन्ते' के पाठ में जठों 'जाव नियमं' शब्द आता है वही जिननी क्षि नामायिक लेनी हो इननी सामायिक लेना, आगे का पाठ

क्षि नामायिक का काउ एक मृदुतं यानी अनालीम मितिका होता है।

समाप्त करना। वाद में नीचे बैठ कर वायाँ घुटना खड़ा रख कर दो बार 'णमोत्थुण' का पाठ बोलना। दूसरी बार 'णमोत्थुण' का पाठ बोलने के समय "ठाणं संपत्ताणं" के बदले 'ठाण संपाविड कामाण' बोलना।

सामायिक में नया ज्ञान सीखना सीखे हुए ज्ञान, थोकड़ा, बोल आदि चितारना, स्वाध्याय करना, परमात्मा के स्तवन, प्रार्थना, स्तोत्र, मृत्ति आदि बोलना, माला फेरना आदि ज्ञान ध्यान करना, आशय यह है कि सामायिक का काल प्रसाद् रहित हो कर ज्ञान ध्यान चिन्तन मनन में विताना चाहिए। सन्त मुनिराज विराजते हों तो उनकी ओर पीठ करके नहीं बैठना चाहिए। स्वाध्याय, व्याख्यान या उपदेश दे रहे हों तो उसमें उपयोग रखना चाहिए। सामायिक में विकार जनक उपकरण नहीं रखना चाहिए। सामायिक के ३२ दोपों का सेवन न करना चाहिए।

सामायिक पारने की विधि

सामायिक पारने के समय 'नमस्कार मंत्र', इच्छाकारेण और 'तस्स उत्तरी' का पाठ बोल कर काउत्सग्ग करना। काउत्सग्ग में दो बार 'लोगस्स' का पाठ मन में कहना और 'णमो अरिहंताण' कह कर काउत्सग्ग पारना। फिर 'नमस्कार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' और 'लोगस्स' का पाठ प्रगट कहना। वाद में वायाँ घुटना खड़ा रख कर ऊपर लिखे अनुसार दो बार 'णमोत्थुण' का पाठ बोलना। फिर 'एयस्स नवमस्स' आदि सामायिक पारने का पूरा पाठ बोल कर अन्त में तीन बार 'नमस्कार मंत्र' गिन कर सामायिक पारना।

॥ इति सामायिक सूत्र समाप्तम् ॥

बोल चाँथा : इन्द्रिय पाँच

- | | |
|--------------------|--------------------|
| १ श्रोत्र इन्द्रिय | ३ व्याण इन्द्रिय |
| २ चक्षुप् इन्द्रिय | ४ रसन इन्द्रिय |
| | ५ स्पर्शन इन्द्रिय |



बोल पाँचवाँ : पर्मासि छह

- | | |
|-----------------|-----------|
| १ आहार | पर्याप्ति |
| २ गतीर | पर्याप्ति |
| ३ इन्द्रिय | पर्याप्ति |
| ४ श्वासोच्छ्वास | पर्याप्ति |
| ५ भाषा | पर्याप्ति |
| ६ मन. | पर्याप्ति |



बोल छठा : प्राण दण

- | | |
|--------------------|----------|
| १ श्रोत्र इन्द्रिय | बल प्राण |
| २ चक्षुप् इन्द्रिय | बल प्राण |

- ३ व्राण इन्द्रिय वल प्राण
 ४ रसन इन्द्रिय वल प्राण
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय वल प्राण
 ६ मनो - वल प्राण
 ७ वचन वल प्राण
 ८ काय वल प्राण
 ९ श्वासोच्छ्वास-वल प्राण
 १० आयुष्य वल प्राण

★

७

दोक्ष सातवॉः शरीर पांच

- १ औदारिक शरीर
 २ वैक्रिय शरीर
 ३ आहारक शरीर
 ४ तंजस शरीर
 ५ कार्मण शरीर

★

बील आठवों : योग पन्द्रह

चार मन के

- १ सत्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिथ्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

- १ सत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिथ्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन- योग

मात्र काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिथ्र काय - योग
- ३ वैक्षिय काय - योग
- ४ वैक्षिय-मिथ्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिथ्र काय - योग
- ७ कार्मण काय - योग



‘बोल नौवाँ’ उपयोग वारह

पांच ज्ञान

- | | | | |
|---|--------------|---|------------------|
| १ | मति ज्ञान | ३ | अवधि ज्ञान |
| २ | श्रुति ज्ञान | ४ | मन. पर्याय ज्ञान |
| ५ | केवल ज्ञान | | |

तीन अज्ञान

- | | |
|---|---------------------------|
| १ | मति अज्ञान |
| २ | श्रुति अज्ञान |
| ३ | अवधि अज्ञान (विभंग ज्ञान) |

चार दर्शन

- | | | | |
|---|----------------|---|------------|
| १ | चक्षुर् दर्शन | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |



बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

- १ नत्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिथ्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

- १ नत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिथ्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन- योग

मात काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिथ्र काय - योग
- ३ वैक्रिय काय - योग
- ४ वैक्रिय-मिथ्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिथ्र काय - योग
- ७ कामंण काय - योग

★

‘बोल नौवाँ’ : उपयोग वारह

पांच ज्ञान

- | | | | |
|---|-------------|---|------------------|
| १ | मति ज्ञान | ३ | अवधि ज्ञान |
| २ | थ्रुत ज्ञान | ४ | मन. पर्याय ज्ञान |
| | | ५ | केवल ज्ञान |

तीन अज्ञान

- | | |
|---|--------------------------|
| १ | मति अज्ञान |
| २ | थ्रुत अज्ञान |
| ३ | अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान) |

चार दर्शन

- | | | | |
|---|----------------|---|------------|
| १ | चक्षुर् दर्शन | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |



बोल दशवाँ : कर्म आठ

१	ज्ञानावरण	कर्म
२	दर्शनावरण	कर्म
३	वेदनीय	कर्म
४	मोहनीय	कर्म
५	आयुप्	कर्म
६	नाम	कर्म
७	गोत्र	कर्म
८	अन्तराय	कर्म



बोल ग्यारहवाँ : गुण-स्थान चाँदह

१	मिथ्या हृष्टि	गुण स्थान
२	मास्त्रादत सम्यग्-हृष्टि	गुण स्थान
३	सम्यग्-मिथ्याहृष्टि	गुण स्थान
४	अविरत सम्यग्-हृष्टि	गुण स्थान
५	देज-विरत	गुण स्थान
६	प्रमत्त सवत	गुण स्थान

७	अप्रमत्त सयत	गुण स्थान
८	निवृत्ति वादर-सम्पराय	मुण स्थान
९	अनिवृत्ति वादर-सम्पराय	गुण स्थान
१०	सूक्ष्म-सम्पराय	गुण स्थान
११	उपशान्त-मोह	गुण स्थान
१२	क्षीण-मोह	गुण स्थान
१३	सयोगी केवली	गुण स्थान
१४	अयोगी केवली	गुण स्थान

★

१२

बोल वारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तर्देस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय

- | | | | |
|---|----------|---|------------|
| १ | जीव शब्द | २ | अजीव शब्द |
| | | ३ | मिश्र शब्द |

चक्षुष् इन्द्रिय के पाच विषय

- | | | | |
|---|------------|---|------------|
| १ | कृष्ण वर्ण | ३ | रक्त वर्ण |
| २ | नील वर्ण | ४ | पीत वर्ण |
| | | ५ | श्वेत वर्ण |

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय

- | | | | |
|---|--------|---|----------|
| १ | सुगन्ध | २ | दुर्गन्ध |
|---|--------|---|----------|

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

- | | | | |
|-----------|---------|---|---------|
| १ | अम्ल रस | ३ | कटु रस |
| २ | मधुर रस | ४ | कपाय रस |
| ५ तिकत रस | | | |

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

- | | | | |
|---|---------------|---|--------------|
| १ | शीत स्पर्श | ५ | लघु स्पर्श |
| २ | उष्ण स्पर्श | ६ | गुरु स्पर्श |
| ३ | हङ्ग स्पर्श | ७ | मृदु स्पर्श |
| ४ | स्तिरध स्पर्श | ८ | कर्कश स्पर्श |



१३

पोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

- | | | | |
|---|---------------|-------|-----------|
| १ | जीव को अजीव | समझना | मिथ्यात्व |
| २ | अजीव को जीव | समझना | मिथ्यात्व |
| ३ | धर्म को अधर्म | समझना | मिथ्यात्व |
| ४ | अधर्म को धर्म | समझना | मिथ्यात्व |
| ५ | साधु को असाधु | समझना | मिथ्यात्व |
| ६ | असाधु को साधु | समझना | मिथ्यात्व |

- ७ ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ८ मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
 १० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व



१४

वोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

- | | |
|----------------|------------------|
| १ जीव तत्त्व | ५ आस्त्रव तत्त्व |
| २ अजीव तत्त्व | ६ सवर तत्त्व |
| ३ पुण्य तत्त्व | ७ निर्जरा तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व | ८ वन्ध तत्त्व |
| ९ मोक्ष तत्त्व | |

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- | |
|---------------------------------|
| १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्ति |
| २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्ति |
| ३ वादर एकेन्द्रिय पर्याप्ति |

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

- | | |
|------------|-----------|
| १ अम्ल रस | ३ कटु रस |
| २ मधुर रस | ४ कपाय रस |
| ५ तिक्त रस | |

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

- | | |
|------------------|----------------|
| १ शीत स्पर्श | ५ लघु स्पर्श |
| २ उष्ण स्पर्श | ६ गुह स्पर्श |
| ३ रुक्ष स्पर्श | ७ मृदु स्पर्श |
| ४ स्तिर्घ स्पर्श | ८ वाकंश स्पर्श |

★

१३

योल तेरहवाँ : दृश्य प्रकार का मिथ्यात्व

- | | |
|-----------------------|-----------|
| १ जीव को अजीव समझना | मिथ्यात्व |
| २ अजीव को जीव समझना | मिथ्यात्व |
| ३ धर्म को अधर्म समझना | मिथ्यात्व |
| ४ अधर्म को धर्म समझना | मिथ्यात्व |
| ५ साधु को असाधु समझना | मिथ्यात्व |
| ६ असाधु को साधु समझना | मिथ्यात्व |

- ७ ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ८ मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
 १० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४

वोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

- | | |
|----------------|------------------|
| १ जीव तत्त्व | ५ आस्रव तत्त्व |
| २ अजीव तत्त्व | ६ सवर तत्त्व |
| ३ पुण्य तत्त्व | ७ निर्जरा तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व | ८ वन्ध तत्त्व |
| | ९ मोक्ष तत्त्व |

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- | | |
|----------------------|-------------|
| १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय | पर्याप्ति |
| २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय | - पर्याप्ति |
| ३ वादर एकेन्द्रिय | पर्याप्ति |

८	वादर	एकेन्द्रिय	अपर्याप्त
५	द्वीन्द्रिय		पर्याप्त
६	द्वीन्द्रिय		अपर्याप्त
७	त्रीन्द्रिय		पर्याप्त
८	त्रीन्द्रिय		अपर्याप्त
९	चतुरन्द्रिय		पर्याप्त
१०	चतुरन्द्रिय		अपर्याप्त
११	असंज्ञी	पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१२	असंज्ञी	पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त
१३	संज्ञी	पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१४	संज्ञी	पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त

अजोव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
३	प्रदेश		

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
३	प्रदेश		

आकाशस्ति काय के तीन भेद

१ स्कन्ध	३८२६	२ देश
		३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्कन्ध	३ प्रदेश
२ देश	४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्त्र	पुण्य	५ वस्त्र	पुण्य
२ पान	पुण्य	६ मन	पुण्य
३ स्थान	पुण्य	७ वचन	पुण्य
४ शर्या	पुण्य	८ काय	पुण्य
		९ नमस्कार	पुण्य

पाप तत्त्व के श्रावरह भेद

१ प्राणातिपात	४ मैथुन
२ मृपावाद	५ परिग्रह
३ अदत्तादान	६ क्रोध

७	मान	१३	अभ्यास्यात्
८	माया	१४	पैशुन्य
९	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	द्वेष	१७	मायामृपा
१२	कलह	१८	मिथ्यादर्शन

आत्मव तत्त्व के वीस भेद

पाच अव्रत

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृपावाद	४	मैथुन
५. परिग्रह			

पांच इन्द्रिय

१	श्रोत्र इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२	चक्षुप् इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३	ग्राण इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४	रसन इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५	स्पर्शन इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच आस्त्रव

- १ मिथ्यात्व आस्त्रव
- २ अविरति आस्त्रव
- ३ प्रमाद आस्त्रव
- ४ कपाय आस्त्रव
- ५ अशुभ योग आस्त्रव

तीन योग

- १ मन - प्रवृत्ति
- २ वचन - प्रवृत्ति
- ३ काय - प्रवृत्ति

दो अयतना

- १ भाष्डोपकरण, अयतना से लेना, रखना ।
- २ सूचि कुशाग्रमात्र, अयतना से लेना, रखना ।

संवर तत्त्व के बोस भेद

पाच व्रत

- १ प्राणातिपात - विरमण
- २ मृषावाद - विरमण

- ३ अदत्तादान - विरमण
 ४ अनन्त्रहचर्य - विरमण
 ५ परिग्रह - विरमण

पाच उन्द्रिय

- १ श्रोत्र उन्द्रिय - निग्रह
 २ चक्षुप् उन्द्रिय - निग्रह
 ३ द्वाण उन्द्रिय - निग्रह
 ४ रसन उन्द्रिय - निग्रह
 ५ स्पर्शन उन्द्रिय - निग्रह

पाच सवर

- १ सम्यक्त्व मवर
 २ विरति मवर
 ३ अप्रमाद सवर
 ४ अकापाय मवर
 ५ शुभ योग मंवर

तीन योग

- १ मनो - निग्रह
 २ वचन - निग्रह
 ३ काय - निग्रह

दो यतना

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
 २ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना ।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

१	अन	तप
२	ऊनोदरी	तप
३	भिक्षाचरी	तप
४	रस-परित्याग	तप
५	काय क्लेश	तप
६	प्रति सलीनता	तप
७	प्रायश्चित्त	तप
८	विनय	तप
९	वैयावृत्य	तप
१०	स्वाध्याय	तप
११	ध्यान	तप
१२	व्युत्सर्ग	तप

वन्ध तत्त्व के चार भेद

१	प्रकृति	वन्ध
२	स्थिति	वन्ध

बोल सोलहवाँ : दण्डक चौधीस

सात नरक का एक दण्डक

१	रत्न	प्रभा
२	शर्करा	प्रभा
३	वालुका	प्रभा
४	पङ्क	प्रभा
५	धूम	प्रभा
६	तमः	प्रभा
७	महात्म	प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१	असुर	कुमार
२	नाग	कुमार
३	मुपर्ण	कुमार
४	विद्युत्	कुमार
५	अग्नि	कुमार
६	द्वीप	कुमार
७	उदयि	कुमार
८	दिशा	कुमार

६	पवन	कुमार
१०	स्तनित	कुमार

पाच स्थावर के पाच दण्डक

१	पृथ्वी	काय
२	अप्	काय
३	तेजस्	काय
४	वायु	काय
५	वनस्पति	काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

१	द्वीन्द्रिय
२	श्रीन्द्रिय
३	चतुर्गिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

१	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का	एक	दण्डक
१	मनुष्य का	एक	दण्डक
१	व्यन्तर देव का	एक	दण्डक
१	ज्योतिप देव का	एक	दण्डक
१	वैमानिक देव का	एक	दण्डक

★

१७

बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

- १ कृष्ण लेश्या
- २ नील लेश्या
- ३ कापोत लेश्या
- ४ तेजो - लेश्या
- ५ पद्म लेश्या
- ६ गुकल लेश्या



१८

बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

- १ सम्यग् दृष्टि
- २ मिथ्यादृष्टि
- ३ मिथ्र दृष्टि



बोल उन्नीमवाँ : ध्यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुक्ल ध्यान

★

बोल वीमवाँ - पहुँ द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच बोल

- १ द्रव्य मे एक
- २ क्षेत्र मे लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
- अहृपी, अजीव, शाश्वत, नोक-व्यापी ।
- ५ गुण से चलन गुण,
- जल मे मद्धनी का हृष्टान्त ।

अधर्मास्ति काय के पाँच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र मे नोक-प्रमाण

- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
 ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
 अरुपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
 ५ गुण से स्थिर गुण,
 श्रान्ति पथिक को छाया का हृष्टान्त

आकाशस्ति काय के पाच बोल

- १ द्रव्य से एक
 २ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
 ३ काल से आदि-अन्त-रहित
 ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
 अरुपी, अजीव, शाश्वत, लोका-लोक-व्यापी,
 ५ गुण से अवकाश-दान गुण,
 दूध मे वताशे का हृष्टान्त

काल द्रव्य के पाच बोल

- १ द्रव्य से एक
 २ क्षेत्र से अद्वाई द्वीप प्रमाण
 ३ काल से आदि-अन्त-रहित
 ४ भाव मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
 अरुपी, अजीव, शाश्वत, अद्वाई द्वीप-वर्ती

५ गुण से वर्तना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

जीवाभित्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अहंपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्गलाभित्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य में अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल में आदि-अन्त रहित
- ४ भाव में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से पूरण-गलन-गुण,
मिलते-विनाशते वादल का दृष्टान्त

★

बोल इक्सीमवाँ : राशि दो

- १ जीव राशि
- २ अजीव राशि

*

बोल वाईसवाँ : आवक के बारह व्रत

पाच अणुव्रत

१	अहिंसा	अणु व्रत
२	सत्य	अणु व्रत
३	अस्तेय	अणु व्रत
४	व्रह्मचर्य	अणु व्रत
५	अपरिग्रह	अणु व्रत

तीन गुण व्रत

१	दिशा व्रत	
२	भोगोपभोग-परिमाण	व्रत
३	अनर्ध-दण्ड-विरमण	व्रत

चार शिक्षा व्रत

- | | | |
|---|--------------|------|
| १ | सामायिक | व्रत |
| २ | देशावकाशिक | व्रत |
| ३ | पौष्टि | व्रत |
| ४ | अतिथि सविभाग | व्रत |

★

२३

बोल तेईमवाँ : माधु के पाँच महाव्रत

- | | | |
|---|------------|---------|
| १ | अहिंसा | महाव्रत |
| २ | सत्य | महाव्रत |
| ३ | अस्तेय | महाव्रत |
| ४ | व्रह्मचर्य | महाव्रत |
| ५ | अपरिग्रह | महाव्रत |

★

२४

बोल चाँचीमवाँ : प्रत्याख्यान के ४६ मंग

- अंक ११ मन नव—एक करण, एक योग से कथन
- | | | |
|---|------------|---------|
| १ | कहूँ नहीं, | मन ने |
| २ | कहूँ नहीं, | बचन में |
| ३ | कहूँ नहीं, | काय से |

२५

४	कराऊँ	नहीं,	मन से
५	कराऊँ	नहीं,	वचन से
६	कराऊँ	नहीं,	काय से
७	अनुमोदूँ	नहीं,	मन से
८	अनुमोदूँ	नहीं,	वचन से
९	अनुमोदूँ	नहीं,	काय से

अंक १२ भग नव—एक करण दो योग से कथन

१	करूँ	नहीं,	मन से, वचन से
२	करूँ	नहीं,	मन से, काय से
३	करूँ	नहीं,	वचन से, काय से
४	कराऊँ	नहीं,	मन से, काय से
५	कराऊँ	नहीं,	मन से, वचन से
६	कराऊँ	नहीं,	वचन से, काय से
७	अनुमोदूँ	नहीं,	मन से, वचन से
८	अनुमोदूँ	नहीं,	मन से, काय से
९	अनुमोदूँ	नहीं,	वचन से, काय से

अंक १३ भग तीन—एक करण तीन योग से कथन

१	करूँ	नहीं मन से, वचन से, काय से
२	कराऊँ	नहीं, मन से, वचन से, काय से
३	अनुमोदूँ	नहीं, मन से, वचन ने, काय से

अक २१	भग नव—दो करण एक योग से कथन
१	करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
२	करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
३	करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
४	करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
५	करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
६	करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
७	कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
८	कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
९	कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक २२	भग नव—दो करण दो योग से कथन
१	करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, वचन से
२	करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, काय से
३	करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से, काय से
४	करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
५	करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
६	करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काय से
७	कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
८	कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
९	कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से

अक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

- १ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं,
मन से, वचन से, काय से
- २ करुँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन मे, वष्टन से, काय मे
- ३ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन मे, काय मे

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

- १ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- २ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ३ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग मे कथन

- १ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन से
- २ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, काय से
- ३ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं;
वचन से, काय से

अक ३३ भग एक-तीन करण, तीन योग से कथन
१ करुँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं
मन से, वचन से, काय से



२५

घोल पञ्चीसवाँ : चारित्र पांच

- | | | |
|---|-----------------|---------|
| १ | सामायिक | चारित्र |
| २ | छेदोपस्थापन | चारित्र |
| ३ | परिहार विशुद्धि | चारित्र |
| ४ | सूक्ष्म सपराय | चारित्र |
| ५ | यथाख्यात | चारित्र |



पञ्चीस बोल

[व्याख्या]

बोल पहला : गति चार

- १ नरक गति
२ तिर्यञ्च गति

- ३ मनुष्य गति
४ देव गति

व्याख्या

ससार में अनन्त जीव है। साधारण व्यक्ति के लिए सबको जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। केवली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवों को जान-देख सकते हैं। अल्पज्ञ जीव में वैसा सामर्थ्य नहीं है, कि वह सबस्त जीवों को जान सके, देख सके। क्योंकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियों द्वारा सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों को जाना नहीं जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवों का परिज्ञान कैसे करे ? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवों का चार विभागों में वर्गीकरण कर दिया है। संसार के समग्र जीव इम में समाहित हो जाते हैं। मसारस्य एक भी जीव ऐसा नहीं रहता जो इस बोल में न आ जाता हो।

लोक-भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना-फिरना। एक स्वान से दूसरे स्वान में जाना। परन्तु यहाँ पर गति का

EEBCCCCCFFPSGGGEEEEEQQEEEEEPPGGGEEEEEFFFFFFFFFFPZEEEEE

एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव से जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था-विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यच गति और नरक गति के विपर्य में भी समझ लेना चाहिए।

‘नाम-कर्म’ की उत्तर प्रकृतियो में, ‘गति-नाम’ एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यङ्ग में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अत ये सब सासारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती हैं। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार में नहीं आता। मुक्त एवं सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बुन्धनों में बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को ससारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल में इन्हीं ससारी आत्माओं का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यक्ष, मनुष्य और देव।

ॐ नमः शशिरेण्यं विष्णुम् । विष्णुम् विष्णुम् । विष्णुम् । विष्णुम् ।

नारक

नरक भूमि के वासी जीव नारक कहे जाते हैं। नरक-भूमि सात हैं, जो इस प्रकार है—रत्नप्रभा, गर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पद्मप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा।

नरक एक ऐसा स्थान है, जहाँ जीव अपने अशुभ कर्मों का फल पाता है। नारक जीवों में अशुद्ध लेखा और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक की वेदना तीन प्रकार की होती है—क्षेत्र-स्वभाव जन्म शीतादि, परस्परजन्य और असुरजन्य।

असज्जी जीव मरकर पहली भूमि तक, भुजपरिसर्पं दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, सिंह चौथी तक, सर्प पांचवी तक, नारी छठी तक और मनुष्य एव मत्स्य सातवी तक जा सकते हैं।

नारक जीव मरकर नारक और देव नहीं बन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही बन सकते हैं।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव को छोड़ कर शेष जिनने भी संसारी जीव है, वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं। नरक-गति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवों के तीन भेद हैं—जलचर, स्थलचर, और खेचर।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च योनि में समाविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक वो छोड़कर शेष गमस्त एनेन्द्रिय गम जीव भी तिर्यञ्च गति में है। लोन-

एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव में जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था-विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विपय में भी समझ लेना चाहिए।

‘नाम-कर्म’ की उत्तर प्रकृतियो में, ‘गति-नाम’ एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यक्ष में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अत ये सब सासारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं; जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती है। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और ससारस्थ । मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है । वह शुद्ध है, निरङ्गन है, मल-रहित है । शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं । जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार में नहीं आता । मुक्त एवं सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होगी ।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनों में बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को ससारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल में इन्हीं ससारी आत्माओं का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यक्ष, मनुष्य और देव।

ॐ श्रीकृष्ण नारायणं नारायणं नारायणं नारायणं नारायणं

नारक

नरक भूमि के वासी जीव नारक कहे जाते हैं। नरक-भूमि सात हैं, जो इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, गर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पद्मप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा।

नरक एक पेसा स्थान है, जहाँ जीव अपने अशुभ कर्मों का फल पाता है। नारक जीवों में अशुद्ध लेश्या और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक की बेदना तीन प्रकार की होती है—धेव-स्वभाव जन्म शीतादि, परस्परजन्य और अमुरजन्य।

असजी जीव मरकर पहली भूमि तक, भुजपरिसर्पं दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, मिह चौथी तक, सर्पं पांचवी तक, नारी छठी तक और मनुष्य एवं मत्स्य सातवी तक जा सकते हैं।

नारक जीव मरकर नारक और देव नहीं बन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही बन सकते हैं।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव को छोड़ कर शोप जिनने भी सत्तारी जीव हैं, वे तिर्यञ्च नहे जाते हैं। नरकगति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवों के तीन भेद हैं—जलचर, स्थलचर, और खेचर।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च योनि में समाविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक को छोड़कर शोप नमन्य पनेन्द्रिय तम जीव भी तिर्यञ्च गति में है। लोक-

EEEEEE& EEEEEEFFFFFFE3338888888333432833688FEE333

भाषा में, पशु, पक्षी और कीट-पत्तगे आदि जीव तिर्यङ्ग हैं। तिर्यङ्ग ग्रपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार प्रायः चारों गतियों में जा सकते हैं।

मनुष्य

शास्त्र में मनुष्य-जन्म को सर्व-श्रेष्ठ और सर्व-ज्येष्ठ कहा गया है। इस का मुख्य कारण यह है, कि मनुष्य अपनी सयम साधना से मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है, जबकि अन्य गतियों में यह सम्भव नहीं है। गुण-स्थान की दृष्टि से भी नारक और देव चतुर्थ गुण-स्थान से आगे नहीं बढ़ सकते। तिर्यक्का का विकास पाचवें से आगे नहीं। परन्तु मनुष्य में समस्त गुण-स्थान सम्भवित हैं। अत मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ एव सर्वज्येष्ठ है।

जन्म के आधार पर मनुष्यों के दो भेद हैं—गर्भज और समूच्छ्वम्। माता और पिता के सयोग से जो जन्म मिलता है, वह गर्भज कहा जाता है। मनुष्य और तिर्यक्ष में ही यह होता है। माता और पिता के सयोग के बिना जो मल-मूत्रादि में मानवाकार प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, वे समूच्छ्वम् कहे जाते हैं। मनुष्य की तरह तिर्यक्ष भी समूच्छ्वम् होते हैं और ये दोनों मनोरहित होने से असत्त्वी ही होते हैं।

भूमि के आधार पर मनुष्यों के दो भेद किये गए हैं—भोग-भूमिज तथा कर्मभूमिज। भोग-भूमि वह है, जहाँ असि-कर्म, मसि-कर्म और कृपि-कर्म नहीं होते। और जहाँ ये होते हैं, वह कर्मभूमि है।

FFFFEEEEEFFFFFEEEEEFFFFEEEEEFFFFEEEEEFFFFEEEEE

सस्कृति और सम्मता के आधार पर भी मनुष्यों के भेद किये गये हैं। जैसे कि आर्य और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्रायः चारों गतियों में जा सकता है।

२५

देव शब्द भारतीय संस्कृति एव साहित्य मे चिरपरिचित है। देवगति मे सुख माना गया है। वहाँ शुभ लेश्या और शुभ परिणाम माने गए हैं। वहाँ प्राय सातावेदनीय कर्म का उदय माना गया है।

देवों के चार भेद हैं—भवन पति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण मनुष्य या तिर्यक्ष गति में जन्म ले सकता है।

गतियों के कारण

संक्षेप में नरक गति के कारण है—महारम्भ, महापरिग्रह। तिर्यक्ष गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह। देव गति का कारण है—सराम-नवम, मध्यमामध्यग—थावकात्व वालतप् श्रीर अकाम निर्जरा श्रादि।



3

बोल दूसरा : जाति पाँच

- | | |
|---------------------|---------------------|
| १ एकेन्द्रिय जाति | ३ त्रीन्द्रिय जाति |
| २ द्वीन्द्रिय जाति | ४ चतुरिन्द्रिय जाति |
| ५ पञ्चेन्द्रिय जाति | |

४५

जीव अनन्त हैं। वे सभी समान नहीं हैं। विकास-क्रम के आधार पर समग्र सासारी जीवों को पाँच विभागों में विभक्त किया गया है। समस्त जीवों में चैतन्य गुण समान होने पर भी उस गुण की अभिव्यक्ति में साधनभूत इन्द्रियों के विकास-क्रम को लेकर ही समारी जीवों के यहाँ पर पाँच भेद किये गये हैं।

जाति शब्द के दो अर्थ हैं—जन्म और समूह। यहाँ पर समूह अर्थ ही ठीक वैठता है। एकेन्द्रिय जाति का अर्थ है—ऐसे प्राणियों का समूह जिन के केवल एक ही इन्द्रिय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति तक का अर्थ समझ लेना चाहिए।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ है—ज्ञान का साधन। जिस के द्वारा आत्मा को पदार्थों का ज्ञान होता है।

इन्द्रियाँ कितनी हैं? पाँच। कुछ लोगों की मान्यता है, कि मन भी इन्द्रिय है। फिर पाँच ही क्यों? मन इन्द्रिय अवश्य है पर वह अन्तरग है। यहाँ पर जीवों के जो पाँच भेद किये गए हैं, वे वहिरण इन्द्रियों के आवार पर ही किए हैं।

नाम कर्म को उत्तर प्रकृतियों में, जाति नाम कर्म भी एक प्रकृति है। उसके उदय से ही जीवों को एकेन्द्रिय आदि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु आंर वनस्पति ।

द्वीनिंद्रिय जीव—लट, सीप, अख, कृमि, घुण आदि ।

શ્રીનિધ્રિય જીવ—ચીટી, ચીચડ, જૂ, લીખ, મકોડા આદ્ય ।

चतुर्विंशति जीव—मक्खो, मच्छर, भवरा, विच्छू आदि।

पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पशु आदि, मनुष्य, देव ।



三

बोल तीसरा : काय छह

- | | |
|--------------|---------------|
| १ पृथ्वी काय | ४ वायु काय |
| २ अप् काय | ५ वनस्पति काय |
| ३ तेजस काय | ६ त्रस काय |

वृद्धास्त्रया

विभिन्न प्रकार के पुदंगलो से दर्ते शरीरों के द्वारा जीव के जो विभाग होते हैं, उन्हें काय कहते हैं।

पृथ्वी है काय जिन की, वे जीव पृथ्वी काय हैं। अप् (जल) है काय जिनकी, वे जीव अप् काय। तेजस् (अग्नि) है काय जिन

॥६६६६६३३३३३३३३३३३३२६६६६२२- लकड़ू ३३३३३६६६७७७

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पाँच

१ श्रोत्रेन्द्रिय

३ ग्राणेन्द्रिय

२ चक्षुरिन्द्रिय

४ रसनेन्द्रिय

५ स्पर्शनेन्द्रिय

व्याख्या

समस्त ससारी जीवो में समान इन्द्रियाँ नहीं होती हैं। किमी में एक, किसी में दो, किसी में तीन, किसी में चार और किमी में पाँच। किसी जीव में पाँच से अधिक इन्द्रिय नहीं हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाँच ही हैं। यहाँ पर इन्द्रियों के श्राधार पर ससारी जीवों का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं, क्योंकि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, अर्थवा जो इन्द्र के ज्ञान का सावन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे संख्या में पाँच हैं—स्पर्शन, रसन, ग्राण, चक्षुप्, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् कर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुप्—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुप् इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)

ॐ शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने शत्रुघ्ने

प्राण—जिस इन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान किया जाता है, सूँधा जाता है, वह ध्वाण इन्द्रिय है, अर्थात् नाक—Sense of smell (Nose)

रसन—जिस इन्द्रिय से रस का ज्ञान किया जाता है, अर्थात् स्वाद लिया जाता है, वह रमन इन्द्रिय है, अर्थात् जिह्वा—Sense of taste (Tongue)

स्पर्शन—जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान किया जाता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है, अर्थात् त्वचा—Sense of Touch.

इन्द्रियों की तरह मन भी ज्ञान का साधन है, फिर इस को इन्द्रिय क्यों नहीं माना गया? मन ज्ञान का साधन श्रवश्य है, परन्तु फिर भी रूप आदि विषयों में प्रवृत्त होने के लिए मन को चक्षु आदि इन्द्रियों का सहारा लेना पड़ता है। यद्यपि मन स्वतन्त्र रूप से भी अपने चिन्त्य विषय को ग्रहण करता है, फिर भी अधिकतर मन का कार्य इन्द्रियों द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करना मात्र है। अत उसे इन्द्रिय न मान कर अनिन्द्रिय (इन्द्रिय जैसा) कहा गया है।

यद्यपि मन पशु और पक्षी आदि से भी होता है, तथापि मन की सब से विकसित अवस्था मनुष्य में देखी जाती है। क्योंकि मनुष्य का नाड़ी-तन्त्र Nervous system दृष्ट दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित है। मनुष्य में Mental power अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन भाग हो सकते हैं—
चेतन मन conscious, चेतनोन्मुख Pre-conscious और
अचेतन Un-conscious

मनः पर्याप्ति—जिस गत्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनो-वर्गण के पुद्गलों को ग्रहण करके मन रूप में बदलता और छोड़ता है।

किन जीवों के कितनी पर्याप्ति होती है? एकेन्द्रिय जीव के भाषा और मन को छोड़ कर शेष सभी हैं। विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक) और असज्जी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोड़कर शेष समस्त पर्याप्ति है। सज्जी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहों पर्याप्ति होती है।

संसारी जीवो मे ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती हैं। कोई भी जीव जब अपर्याप्त-दशा मे मरता है, तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है।

पर्याप्ति के आधार पर जीवों के दो भेद किये हैं—पर्याप्ति और अपर्याप्ति। जिस जीव_ने स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्त कहा जाता है।

अपर्याप्त वह है, जो स्वयोग्य पर्याप्ति को पूर्ण नहीं कर पाया है।



6

बोल छठा : प्राण दस

१ थोत्र वल प्राण	६ मन बल प्राण
२ चक्षुष् वल प्राण	७ वचन बल प्राण
३ ध्राण वल प्राण	८ काय बल प्राण
४ रसन वल प्राण	९ श्वासोच्छ्वास बल प्राण
५ स्पर्शन वल प्राण	१० आयुष्य बल प्राण

ब्रह्माण्डम्

प्राण अर्थात् जीवन जीने की शक्ति। जिस शक्ति के सयोग से जीव जीवित रहे, और वियोग से मर जाय; वह प्राण है। प्राण जीव के बाह्य लक्षण हैं। प्राणों के बिना जीव जीवित नहीं रहता।

शास्त्र में प्राण के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। जो प्राण केवल ससार अवस्था में ही मिलता है, मुक्त दशा में नहीं, वह द्रव्य प्राण कहा जाता है। द्रव्य प्राण के दश भेद हैं।

पाँच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास तथा आयुष्य ये सब मिलकर दशा द्रव्य प्राण हैं।

जो प्राण मुक्त दशा में भी आत्मा के साथ रहते हैं, वे भाव प्राण हैं। क्योंकि वे आत्मा के निज स्वरूप हैं। जैसे कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यं।

ॐ तत् त्वं पूर्वोक्त शब्दोऽपि अन्यत्र न उपलब्धः । एवम् इति शब्दोऽपि अन्यत्र न उपलब्धः ।

यहाँ पर प्रत्येक शब्द के साथ बल लगा है। बल का ग्रथ है, शक्ति-विशेष। दूने की शक्ति, चखने की शक्ति, सूँधने की शक्ति, देखने की शक्ति और सुनने की शक्ति। यह इन्द्रिय प्राण है।

विचार करने की शक्ति, बोलने की शक्ति, और चलने-फिरने आदि ज्ञारीरिक शक्ति। ये तीन योग रूप प्राण हैं।

जीव जिस शक्ति से बाहर की वायु को अन्दर खीचता है, और अन्दर की वायु को बाहर फेकता है, वह क्रमशः श्वास और उच्छ्वास है।

जिस शक्ति के अस्तित्व से जीव जीवित रहता है, और जिस के असद् भाव से जीव मर जाता है, वह आयुष्य प्राण है। दशो प्राणों में आयुष्य प्राण सब से मुख्य है। इसके अभाव में दूसरे प्राणों का कोई महत्व नहीं रहता।

किस जीव में कितने प्राण हो सकते हैं? इसके समाधान में शास्त्र में कहा गया है, कि—

एकेन्द्रिय जीव में चार प्राण हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, काय, श्वासो-उच्छ्वास और आयुष्य।

द्विन्द्रिय जीव में छह प्राण हैं—चार पूर्वोक्त तथा रसन-इन्द्रिय और वचन।

त्रीन्द्रिय जीव में सात प्राण हैं—छह पूर्वोक्त और धारेन्द्रिय।

चतुरन्द्रिय जीव में आठ प्राण हैं—सात पूर्वोक्त और चक्षु-रिन्द्रिय।

FFFFB333FFFF FFFFFB333FFFF FFFFFFFFFFFF FFFFFFFFFFFF FFFFFFFFFFFF FFFFFB333FFFF

असज्जी पञ्चेन्द्रिय जीव मे नव प्राण हैं—आठ पूर्वोक्त और श्रोत्र इन्द्रिय ।

सज्जी पञ्चेन्द्रिय जीव मे दश प्राण है— नव पूर्वोक्त श्रौर इशावा
मन ।



۹

बोल सातवाँ : शरीर पाँच

- | | |
|----------------|--------------|
| १ औदारिक शरीर | ३ आहारक शरीर |
| २ वैक्रिय शरीर | ४ तैजस शरीर |
| ५ कार्मण शरीर | |

व्याख्या

आत्मा जिस के द्वारा पूर्व-सचित् कर्मों को भोगता है, उसे शरीर कहते हैं। “भोगायतन शरीरम् ।” अर्थात् शरीर भोग का आयतन है, स्थान है।

संसार अवस्था में इन पाँच शरीरों में से कोई न कोई शरीर अवश्य ही रहता है। एक जन्म से दूसरे जन्म को अहण करते समय अन्तराल गति में भी तैजस और कार्मण शरीर रहते हैं। क्योंकि विना शरीर के जन्म और मरण हो कैसे सकता है।

ओदारिक शरीर—उदार (स्थूल) पुढ़गलो से वना शरीर ।

FFFFEEEE63339999CCCCFFEE66663333EE3339999CCCC66663333EE333

अथवा प्रधान पुद्गलो से बना शरीर। तीर्थञ्चुर आदि का शरीर प्रधान पुद्गलो से बनता है। शेष सर्व साधारण जीवों का शरीर स्थूल असार पुद्गलो से बना होता है।

वैकिय शरीर—जिस शरीर से विविध और विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। जैसे एक रूप से अनेक रूप करना। अणु से विराट करना। दृश्य से अदृश्य करना, आदि।

आहारक शरीर—आहारक लब्धि से बनाया गया शरीर। जीव दया, तीर्थद्वार की ऋद्धि का दर्शन तथा सशय निवारण आदि विशेष प्रयोजन से चतुर्दश पूर्वधर मुनि अपनी आहारक लब्धि से जो शरीर बनाते हैं, वह आहारक शरीर होता है।

तैजस शरीर—तैजस पुद्गलो से बना हुआ शरीर, शरीर में विद्यमान उष्णता से इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शरीर आहार का पाचन करता है। तपोविशेष से प्राप्त तैजस लघ्व का कारण भी यही शरीर है।

कार्मण शरीर— कार्मण वर्गणाओं से बना शरीर। अथवा जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। यह शरीर ही सब शरीरों का बीज है।

प्रथम तीन शरीरों के अग, उपाग और अगोपाग होते हैं। तजस और कार्मण के नहीं। क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर हैं। इन पाचों में पूर्व से उत्तरोत्तर सूक्ष्म है और उत्तर से पूर्व-पूर्व शरीर स्थूल हैं। सब से स्थूल औदारिक और सब शरीरों से सूक्ष्म शरीर कार्मण है।

03183933E63933EE3933839EEEEELEEEEEE899666666

2

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के —

- १ सत्य मनो योग
 - २ असत्य मनोयोग
 - ३ मिश्र मनोयोग
 - ४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

- १ सत्य वचन योग
 - २ असत्य वचन योग
 - ३ मिश्र वचन योग
 - ४ व्यवेहार वचन योग

सात काय के —

- १ औदारिक काय योग
 - २ औदारिक-मिश्र काय योग
 - ३ वैक्रिय काय योग

- ४ वैक्रिय-मिश्र काय योग
 - ५ आहारक-काय योग
 - ६ आहारक-मिश्र काय योग
 - ७ कार्मण काय योग

व्याख्या

‘भारतीय साहित्य में योग शब्द सुपरिचित एवं वह व्यापक है। सामान्य रूप में योग का ग्रर्थ ध्यान तथा समाधि किया जाता है। ‘योग-सूत्र’ में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है।

परन्तु जैन शास्त्रानुसार, प्रस्तुत में योग शब्द का विशेष अर्थ लिया गया है। यहाँ पर मन, वचन और काय के व्यापार को योग कहा गया है। मन, वचन और काय वर्गण के पुद्गलों की सहायता से, आत्म-प्रदेशों में होने वाले परिस्पन्द को Vibration कम्पन व हलन-चलन को योग कहा गया है।

मुख्य रूप में योग के तीन भेद हैं। विस्तार की अपेक्षा से उसी के पन्द्रह भेद कर दिये गए हैं।

मन दो प्रकार का है—भाव मन और द्रव्य मन। भाव मन को Subjective mind और द्रव्यमन को Objective mind कहते हैं। द्रव्य मन का सम्बन्ध Brain से है। और भाव मन का सम्बन्ध आत्मा से।

मन की प्रवृत्ति चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी मत्यासत्य (मिश्र) और कभी लोक व्यवहाररूप ।

वचन का अर्थ है भाषा। वह भी चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी मत्यासत्य (मिश्र) और कभी लोक-अपवहाररूप।

काय का अर्थ है—शरीर। उस के पाच भेद हैं। शरीर का व्यापार सात प्रकार का ही हो सकता है। अधिक नहीं। अतः काय योग के सात भेद किए गए हैं।

कार्मण योग की तरह तैजस योग क्यों नहीं माना गया ? उसके स्वतन्त्र रूप में प्रानने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यापार कार्मण शरीर का है, वही तैजस शरीर का है। क्योंकि तैजस और कार्मण शरीर सदा सहचर रहते हैं। अतः कार्मण योग में ही तैजस योग समाहित हो जाता है।



ॐ श्रीमद्भगवद्गीता अध्यायः द्वयः स्तुतिः उपर्योग वारह

६

वोल नौवाँ : उपर्योग वारह

पाच ज्ञान —

- १ मति ज्ञान
- २ श्रुत ज्ञान
- ३ अवधि ज्ञान
- ४ मनः पर्याय ज्ञान
- ५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान —

- १ मति अज्ञान
- २ श्रुत अज्ञान
- ३ अवधि अज्ञान (विभद्ध ज्ञान)

चार दर्शन

- १ चक्षुर् दर्शन
- २ अचक्षुर् दर्शन
- ३ अवधि दर्शन
- ४ केवल दर्शन

३४८

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते हैं। पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप में और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तो चेतना के उम व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते हैं, ज्ञान माकार और दर्शन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान। मन से अरूपी पदार्थों का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस से शब्द और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुति का परस्पर सम्बन्ध है। दोनों में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुति ज्ञान कार्य है। - दोनों ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं।

8333EEB3333E8333S80EE333EE81EEEEEFFEE333S00 333

3

बोल नौवाँ : उपयोग वारह

पाच ज्ञान —

- १ मति ज्ञान
 - २ श्रुति ज्ञान
 - ३ अवधि ज्ञान
 - ४ मनः पर्याय ज्ञान
 - ५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान—

- १ मति अज्ञान
 - २ श्रुति अज्ञान
 - ३ अवधि अज्ञान (विभद्धज्ञान)

चार दर्शन

- १ चक्षुर् दर्शन
 - २ अचक्षुर् दर्शन
 - ३ अवधि दर्शन
 - ४ केवल दर्शन

व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते हैं। पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप में और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तो चेतना के उस व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तब उसे दर्घनोपयोग कहते हैं, ज्ञान साकार और दर्घन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान । मन से अरूपी पदार्थों का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है ।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस से शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाना है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुति का परस्पर सम्बन्ध है। दोनों में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुति ज्ञान कार्य है। दोनों ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं।

अवधि ज्ञान—इन्दिय और मन की सहायता के बिना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक खपी द्रव्य का ज्ञान।

मनः पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहाया के बिना आत्मा द्वारा सज्जी जीवों के मनोगत भावों को जानने वाला ज्ञान।

केवल ज्ञान—मूर्त, अमूर्त, सूक्ष्म, स्थूल आदि त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थ और उन की सम्पूर्ण पर्यायों को एक साथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् मम्पूर्ण पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को विना किसी बाह्य साधन के माझात् आत्मा द्वारा एक साथ जान लेने वाला ज्ञान ।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अवधि और मन पर्याय विकल-पूर्ण प्रत्यक्ष हैं, और केवल ज्ञान सकल-पूर्ण प्रत्यक्ष है।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि क्रम से मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, और अवधि अज्ञान कहे जाते हैं। यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि कुत्सित ज्ञान समझना चाहिए। कुत्सित ज्ञान का अर्थ है, मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान।

चक्षुर् दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर
चक्षु द्वारा पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है।

अचक्षुर् दर्शन—प्रचक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु को छोड़ करैशेष इन्द्रियों में और मन में पदार्थों का जो सामान्य रूप से विघ होता है।

ॐ देवदेवं देवेष्टु देवेष्टु देवेष्टु देवेष्टु देवेष्टु देवेष्टु

अवधि दर्शन—अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर, इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का जो सामान्य वोध होता है।

केवल दर्शन—केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय होने पर साक्षात् आत्मा द्वारा सकल पदार्थों का जो सामान्य वोध होता है, उसे केवल दर्शन कहते हैं।



१०

बोल दशवाँ : कर्म आठ

१ ज्ञानावरण कर्म	५ आयुष् कर्म
२ दर्शनावरण कर्म	६ नाम कर्म
३ वेदनीय कर्म	७ गोत्र कर्म
४ भोहनीय कर्म	८ अन्तराय कर्म

व्याख्या

मिथ्यात्व, कपाय और योग आदि कारणों से जीव के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है। जीव और कर्म का यह सम्बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का ग्रथवा अग्नि और लोह पिण्ड का। आत्म-सम्बद्ध पुद्गल द्रव्य को कर्म कहते हैं।

यद्यपि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से है, परन्तु प्रत्येक का यह सम्बन्ध अनन्त काल तक रहेगा, सो बात नहीं

है। खान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष गोध-क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र मे मुख्य रूप से कर्म के दो भेद है—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुढ़गलो की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुओं के देखने में रुकावट पड़ती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने में रुकावट पड़ती है।

जैसे मघ्न वादलो से सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उत्तना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन-रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा मे इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड़ पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की सामान्य दोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार-पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने में रुका-

वट डालता है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थों का सामान्य वोध करने में रुकावट डालता है

वेदनीय कर्म—जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयों से उत्पन्न सुख और दुख रूप में वेदन अर्थात् अनुभव किया जाय। यह कर्म मधु-लिप्त तलवार की धार को चाटने के समान है। चाटते समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद में दुख होता है। वेदनीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दुख तो दुखरूप है ही, किन्तु सुख भी अन्ततः दुखरूप ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, भले-बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो सदाचार विमुख करता है, वह कर्म मोहनीय है। यह कर्म अन्य कर्मों से प्रवल कर्म है। यह मदिरा के सदृश होता है। जैसे मदिरा पीने वाला विवेक-विकल हो जाता है, वैसे ही मोहनीय के प्रभाव से जीव विवेक-शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के श्रद्धान् एव चारित्र गुण का घात करता है।

आयुष् कर्म— जिस कर्म के रहते प्राणी नर, नारकादि रूप से जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। यह कर्म कारणार के समान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव कभी नारक, कभी तिर्यक्ष, कभी मनुष्य और कभी देव कहलाता है। अथवा जो कर्म जीव को एकेन्द्रिय आदि नानाविध पर्यायों में परिणत करता है। यह कर्म चित्रकार के समान माना गया है। जैसे चित्रकार नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम कर्म भी जीव के नाना रूप बनाता है।

कल्पना किया है गुण स्थान—वह कहने के लिए वह
स्थान अद्यता है। इसमें विचार दृष्टि किया नहीं हो पाती
है। इनमें किन जीव तत्त्वों पर न एक दृष्टि करता है, न
ग्रहण करता है।

इनमें दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग-रहित। त्याग
नहीं है, दृष्टि जिसकी, वह विविध स्म्यग्रहिषि, उसका
विविध स्म्यग्रहिषि गुणस्थान। वह त्याग-शून्य सम्पर्ग
नहीं है, इसमें दृष्टि तो उभयं है, पर आचरण
के

इनमें गुण स्थान—जिसकी विशेषता (पूर्ण न हो
उमका गुणस्थान, देव विरत गुणस्थान। इसमें
ज्ञान-रूप में, हिंसादि से विरति का भाव आजाता है।

ज्ञान संबंध गुण स्थान—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को
ज्ञान संबंध गुणस्थान कहते हैं, के सर्व रूप से, पूर्ण रूप से
विविज आ जाता है। सर्व विविजता है।

अप्रभन्न सयत गुण स्थान—साधु के
ज्ञानस्त सयत गुण स्थान कहते हैं, प्रमाद
के मात्रा और भी अधिक विगु

निवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थान
और सम्पराय का अर्थ क्या है।
की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में स्थूल
ज्ञान इसे बादर सम्पराय कहते

- ८ निवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान
 ९ अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान
 १० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान
 ११ उपशान्त मोह-गुण स्थान
 १२ क्षीण-मोह गुण स्थान
 १३ सयोगी केवली गुण स्थान
 १४ अयोगी केवली गुण स्थान ।

व्याख्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लेकर शुद्धतम दशा तक, ससार अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक और जीव की वद्ध स्थिति से लेकर मुक्ति स्थिति तक—पहुँचने के लिए चाँदह भूमिकाएँ stages मानी गई हैं, जिन्हें गुण स्थान अर्थात् विकास भूमिकाएँ कहते हैं। गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की स्थिति-विशेष। गुण (आत्मशक्ति) के स्थान (क्रमिक विकास) को गुणस्थान कहा जाता है।

मिथ्या हृषि गुण स्थान—मिथ्या (तत्त्व श्रद्धान के विपरीत) है, हृषि जिसकी, वह मिथ्या हृषि, उसका गुणस्थान मिथ्या हृषि गुणस्थान। यह जीव की निम्नतम दशा है।

सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान— सम्यक्त्व के आस्वाद मात्र से सहित जो दृष्टि वह सास्वादन। सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुवन्धी कपाय के उदय से सम्यक्त्व से पराद्भुत्ति भिन्नात्व की ओर भुक्ते हुए जीव की स्थिति।

FFFF3333666333FFEEFF00000000000000000000000000000000

सम्यग् मिथ्या हृषि गुण स्थान—यह आत्मा की सदिग्धि, दोलायमान अवस्था है। इसमें विचार-दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती है। इसमें स्थित जीव तत्त्वों पर न एकान्त रुचि करता है, न एकान्त अरुचि।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग-रहित । त्याग रहित है, सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविरत सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान । यह त्याग-शून्य सम्यग् विचार की अवस्था है, इसमें दृष्टि तो सम्यग् है, पर आचरण नहीं ।

देश विरत गुण स्थान—जिसकी विरति (त्याग) पूर्ण न हो वह देश विरति, उसका गुणस्थान, देश विरत गुणस्थान। इसमें देश-रूप में, अग्र-रूप में, हिंसादि से विरति का भाव आ जाता है।

प्रमत्त संयत गुण स्थान— प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते हैं। इसमें सर्व रूप से, पूर्ण रूप से चारित्र आ जाता है। सर्व विरत बन जाता है।

अप्रमत्त सयत गुण स्थान—प्रमाद-मुक्त साधु के गुणस्थान को अप्रमत्त सयत गुण स्थान कहते हैं। इसमें प्रमाद का अभाव होने से आत्मा और भी अधिक विशुद्ध होता है।

निवृत्ति वादर सम्पराय गुणस्थान—वादर का अर्थ स्थूल है, और सम्पराय का अर्थ कपाय है। दशम गुण स्थान सूक्ष्म सम्पराय की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में स्थूल कपाय का अस्तित्व होने के कारण इसे वादर सम्पराय कहते हैं। निवृत्ति का अर्थ भिन्नता है।

श्रत प्रस्तुत गुण स्थान के सम ममय-वर्ती समस्त जीवों के अध्यवसाय भिन्न अर्थात् न्यूनाधिक शृद्धि वाले होते हैं।

अनिवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान—प्रस्तुत गुण स्थान मे भी वादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय का अस्तित्व रहता है। अत यह भी वादर-सम्पराय कहलाता है। पूर्ववर्ती अनिवृत्ति छब्द का अर्थ अभिन्नता है। अत. नवम गुणस्थान मे जो जीव समसमय-वर्ती होते हैं, उन सबके अध्यवसाय एक समान अर्थात्, तुल्य शुद्धि वाले होते हैं।

सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान – सूक्ष्म रूप में सम्पराय कपाय (मात्र लोभ) है जिसमें वह सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान। इसमें, चार कपायों में से केवल सूक्ष्म लोभ रह जाता है।

उपशान्त मोह गुण स्थान—उपशान्त अर्थात् अन्तमुहूर्त के लिए शान्त हो गया है, मोह कर्म जिसमें, वह उपशान्त मोह, उसका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान। इसमें मोह (लोभ) का उपर्युक्त होता है, क्षय नहीं।

क्षीण मोह गुण स्थान—क्षीण, अर्थात् समूल नष्ट हो गया है, मोह कर्म जिसका, वह क्षीण मोह, उसका गुण स्थान, क्षीण मोह गुण स्थान। इसमें मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है।

सयोगी केवली गुण स्थान—योग का अर्थ मन, वचन और काय का व्यापार है। सयोगी अर्थात् योग युक्त है जो केवली, वह सयोगी केवली, उसका गुण स्थान, सयोगी केवली गुणस्थान, इसमे आत्मा सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हो जाता है।

FFFF9999EEEEFFFFGGGGFFFEFPEEEEDDDDDDEEEEEE

अयोगी केवली गुण स्थान—अयोगी, योग रहित । योग-रहित है, केवली जिसमे, वह अयोगी केवली, उसका गुणस्थान, अयोगी केवली गुणस्थान । इसमे आत्मा शैलेश अर्थात् मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हो जाता है । इसके बाद आत्मा गुणस्थानातीत होकर सर्वथा शुद्ध, मुक्त, परमात्मा बन जाता है ।



22

बोल वारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तर्हस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय—

- १ जीव शब्द
 - २ अजीव शब्द
 - ३ मिश्र शब्द

चक्षु-इन्द्रिय के पाँच विपय—

- | | |
|---|------------|
| १ | कृष्ण वर्ण |
| २ | नीलवर्ण |
| ३ | रक्त वर्ण |
| ४ | पीतवर्ण |
| ५ | श्वेतवर्ण |

घ्राण इन्द्रिय के दो विपय—

- १ सुगन्ध
२ दुर्गन्ध

रसन इन्द्रिय के पाँच विषय—

- १ अम्ल (खट्टा) रस
 - २ मधुर (मीठा) रस
 - ३ कटु (कडवा) रस
 - ४ कषाय (कसैला) रस
 - ५ तिक्त (तीखा) रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय—

- | | |
|---|----------------|
| १ | शीत स्पर्श |
| २ | उष्ण स्पर्श |
| ३ | रुक्ष स्पर्श |
| ४ | स्निग्ध स्पर्श |
| ५ | लघु स्पर्श |
| ६ | गुरु स्पर्श |
| ७ | मृदु स्पर्श |
| ८ | कर्कश स्पर्श |

FFFF3333EEFFFFFFEEEEECCCCCCCC33333333FFFF333

व्याख्या

इन्द्रिय पाँच हैं, अत मुख्यतया उनके विषय भी पाँच हैं—
शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श। विस्तार की अपेक्षा से इनके
तेईस विषय हो जाते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय तेईस और विकार
दो सौ चालीस होते हैं।

मसार के समस्त पदार्थ दो विभागो में विभक्त हैं—मूर्त और अमूर्त । जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह मूर्त, शेष सभी अमूर्त । मूर्त अर्थात् पौदगलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो सकते हैं, अमूर्त नहीं,—जैसे आत्मा आदि ।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ही ग्रहण करती है। दूसरे के विषय को नहीं। रूप को चक्षुष् ही ग्रहण करती है। ध्यान एवं रसन आदि नहीं। सर्वत्र यही क्रम है।

विकार

पाँच इन्द्रियों के दो सौ चालीस विकार होते हैं और वे इस प्रकार समझने चाहिए—

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषयों के १२ विकार—जीव शब्द, अंजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ और तीन अशुभ। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

चक्षुपृ इन्द्रिय के पाँच विपयों के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अवित्त और ५ मिश्र। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

ध्राण इन्द्रिय के दो विषयों के १२ विकार—२ सचित्त,
२ अर्थात् और २ मिथ्र। इन छह पर राग और छह पर द्वेष।
ये १३ विकार हुए।

रसन इन्द्रिय के पाच विपयों के ६० विकार—५ सचित्, ५ असचित् और ५ मिश्र। १५ शुभ और १५ अशुभ। ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

स्पर्शन इन्द्रिय के श्राठ विषयों के ६६ विकार—८ सचित्त, ८ असचित्त और ८ मिश्र। २४ शुभ और २४ अशुभ, इस प्रकार ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष। ये ६६ विकार हुए।



۲۳

बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

- १ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
 - २ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
 - ३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
 - ४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
 - ५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
 - ६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व
 - ७ ससार-मार्ग को मोक्ष मार्ग समझना मिथ्यात्व
 - ८ मोक्ष-मार्ग को ससार-मार्ग समझना मिथ्यात्व

१० मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

व्याख्या

जीव के विपरीत भ्रष्टानरूप परिणाम को मिथ्यात्व कहा गया है। मिथ्यात्व ससार का बीज है, कारण है। जब तक आत्मा में मिथ्यात्व का शल्य है, तब तक वह शुद्ध, निर्मल और मलमुक्त नहीं बन सकता।

अतत्त्व में तत्त्व, बुद्धि रखना, अधर्म में धर्म बुद्धि रखना, अदेव में देवबुद्धि रखना और अगुरु में गुरुबुद्धि रखना, मिथ्यात्व है।

तत्त्व—यहाँ पर तत्त्व का अर्थ जीव, अजीव आदि तत्त्व सम-
भना चाहिए।

देव—कर्म रूप शत्रु के विजेता, अष्टादश दोप-शून्य, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग अरिहत भगवान् देव है।

गुरु—कनक और कान्ता के त्यागी, पञ्च महाव्रत के पालने वाले, पञ्च समिति और तीन गुप्ति के धारक सन्त गुरु हैं।

धर्म—सर्वज्ञ भाषित, दयामय, विनय-मूलक, कर्म का नाश करने वाला और मोक्ष की ओर ले जाने वाला तत्व धर्म है।

यह वर्णन व्यवहार दृष्टि से किया गया है। निश्चय दृष्टि से तो आत्मा स्वयं ही देव है, स्वयं ही गुरु है, और स्वयं ही धर्म है।

प्रस्तुत बोल मे दग प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन किया गया

है। जीव को जीव और अजीव को अजीव समझना सम्यक्त्व है। परन्तु जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार अजीव का जीव समझना भी मिथ्यात्व है। यथार्थ-दृष्टि सम्यक्त्व है, और विपरीत-दृष्टि मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व मोक्ष-हेतु है, और मिथ्यात्व मसार-हेतु।

इसी प्रकार धर्म और अधर्म, साधु और असाधु, ससार और मोक्ष तथा मुक्ति और अमुक्ति के विषय में भी समझ ले। यदि इनमें यथार्थ दृष्टि है, तो वह सम्यक्त्व है, और यदि इनमें विपरीत दृष्टि है, तो वह मिथ्यात्व है।



38

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ मेद नव तत्त्व

१	जीव तत्त्व	५	आनन्द तत्त्व
२	अजीव तत्त्व	६	सबर तत्त्व
३	पुण्य तत्त्व	७	निर्जरा तत्त्व
४	पाप तत्त्व	८	वन्ध तत्त्व
९ मोक्ष तत्त्व		-	

यथार्थ सद् वस्तु को तत्त्व कहते हैं। ये नव मूल तत्त्व हैं। जीव चेतनामय है। अजीव अचेतनामय है। पुण्य मुख देने वाला है। पाप दुःख देने वाला है। आत्म, शुभ और अशुभ कर्मों के

333CCCCC FEEFFFFF EEEEEECC CFFFFFEE FEECCCCCCCCC FEEFFFFFCCCC

आने का द्वार है। सवर, आख्यव का निरोध है। एक देश से कर्मों का आत्मा से अलग होना निर्जरा है। बन्ध, आत्मा और कर्म पुद्गल का परस्पर सम्बन्ध है। मोक्ष, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय है।

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
 - २ बादर एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
 - ३ द्वीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
 - ४ त्रीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
 - ५ चतुरिन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
 - ६ असजी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
 - ७ सजी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त

१५४

एकेन्द्रिय जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और वादर। व्यवहार दृष्टि से सूक्ष्म का अर्थ है—ग्राहियों से न दीखने वाले जीव, और वादर का अर्थ है—स्थूल जीव। परन्तु शास्त्र की दृष्टि से जिन्हे सूक्ष्म नाम कर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म और जिन्हे वादर नाम कर्म का उदय हो, वे वादर। वादर जीव के शरीर भी अलग-अलग नहीं देखे जाते। किन्तु वे समुदाय रूप में ही देखे जाते हैं। सूक्ष्म जीव मपूर्ण लोक व्यापी है। वादर लोक के एक दैश में हैं।

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- | | |
|---|--------|
| १ | स्कन्ध |
| २ | देश |
| ३ | प्रदेश |

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- | | |
|---|--------|
| १ | स्कन्ध |
| २ | देश |
| ३ | प्रदेश |

आकाशस्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

१ दशवाँ काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

- संक्षिप्त
देश

ॐ श्रीकृष्ण विनायकं श्रीरामं श्रीकृष्णं श्रीरामकृष्णं श्रीरामकृष्णं

३ प्रदेश

४ परमाणु

व्याख्या

स्कन्ध—स्कन्ध के दो अर्थ है—एक तो अखण्ड वस्तु को स्कन्ध कहते हैं, दूसरा अलग-अलग अवयव एकत्रित होकर जो एक अवयवी अर्थात् एक समूह बन जाता है, उस समुदित अवस्था का नाम भी स्कन्ध है।

देश—स्कन्ध का एक कल्पित भाग

प्रदेश—निरश अथ, अर्थात् जिस अशा का दूसरा अथ नहीं हो सकता। यह स्कन्ध का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है।

परमाणु—प्रदेश और परमाणु एक ही हैं, परन्तु अन्तर इतना ही है कि जब तक वह स्कन्ध से सलग्न रहता है, तब तक प्रदेश और जब स्कन्ध से अलग हो जाता है, तब उसे परमाणु कहने हैं। “स्कन्धसयुक्त प्रदेश, स्कन्ध-विविक्त परमाणु।”

पुढ़गलास्तिकाय मे स्कन्ध, देश, प्रदेश का व्यवहा० परिलक्षित हो जाता है। किन्तु धर्मास्तिकाय आदि पदार्थों मे यह सब व्यवहार बुद्धि-परिकल्पित होता है। वे मूलत अखण्ड पदार्थ हैं। अखण्ड पदार्थ अनादि अनन्त है, वह किन्हीं अवयवों से मिल कर नहीं बनता। अतौं देश और प्रदेश आदि मात्र बुद्धि-परिकल्पित ही होते हैं, वास

नहीं। इसी लिए धर्मास्तिकाय आदि का 'चौथा भेद परमाणु नहीं माना गया है। परमाणु वही प्रदेश होता है, जो स्कन्ध से अलग होता है। और धर्मास्तिकाय आदि के बुद्धि-परिकाल्पन प्रदेश तीन काल में कभी भी पृथक् नहीं होते।

काल के भेद-प्रभेद न बताकर मात्र 'दशवा काल' इतना ही कहा गया है। इसका कारण यह है, कि काल स्कन्ध नहीं है। अत उसके देश और प्रदेश आदि किसी प्रकार के भी भेद प्रभेद नहीं होते। तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवें अध्याय में काल को समय-रूप कहा है, और वे समय अनून्त हैं।

पूण्य तत्त्व के नव भेद

- | | |
|---|---------------|
| १ | अन्न पुण्य |
| २ | पान पुण्य |
| ३ | स्थान पुण्य |
| ४ | भृत्या पुण्य |
| ५ | वस्त्र पुण्य |
| ६ | मन पुण्य |
| ७ | बचन पुण्य |
| ८ | काय पुण्य |
| ९ | नमस्कार पुण्य |

व्याख्या

पुण्य सुख-रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बँधने वाला शुभ कर्म। पुण्य से आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते हैं।

यहाँ पुण्य के जो नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव में पुण्य के भेद नहीं, किन्तु पुण्य के कारण हैं, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणों से पुण्य का बन्ध कर सकता है।
 किसी दुखित को अथवा सदाचारी व्यक्ति को स्थान, शर्या और वस्त्र देने से, गरीर से किसी की सेवा करने से, मधुर एवं हितकर वाणी बोलने से, शुभ विचारों का चिन्तन करने से और किसी पूज्य पुरुष को बन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय, यश आदि ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को बांधते समय दुख और भोगते समय सुख मिलता है। आत्म-विकास में पुण्य कथचित् निमित्त है, अत उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था में पुण्य भी हेय है।

पाप तत्त्व के अठारह भेद

- १ प्राणातिपात (हिसा)
- २ मृषावाद (झूठ)
- ३ अदत्तादान (चोरी)
- ४ मैथुन (व्यभिचार)
- ५ परिग्रह (ममताभाव)
- ६ क्रोध
- ७ मान
- ८ माया
- ९ लोभ
- १० राग (मनोज्ज वस्तु पर स्नेह)
- ११ द्वेष (अमनोज्ज वस्तु पर द्वेष)
- १२ कलह (क्लेश, झगड़ा)
- १३ अभ्याख्यान (झूठा कलक लगाना)
- १४ पैशुन्य (दूसरे की चुगली करना)
- १५ पर-परिवाद (अवर्णवाद, निन्दा)
- १६ रति-अरति (शब्दादि मनोज्ज पर प्रीति, अमनोज्ज पर अप्रीति)

१७ माया मृषा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)
 १८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अगुभ योग से बँधने वाले अगुभ कर्म को पाप कहते हैं। क्योंकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुख, और पीड़ा मिलती है। पाप बँधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दुखकर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप वाधा जाता है, और ज्ञानावरण, दर्जनावरण, अमातावेदनीय, मोहनीय, नरक गति, तिर्यंचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानों के सेवन से जीव भारी हो जाता है, और नीच गति में जाता है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और ऊच गति प्राप्त करता है। पाप हेय ही होता है, कभी उपादेय नहीं होता।

पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप वन्ध के कारण हैं। कारण में कार्य का उपचार मानकर ही पापतत्व के भेद बताए गए हैं।

आस्त्रव तत्त्व के बीस भेद

पाँच अव्रत—

१ प्राणातिपात

२ मृषावाद

- ३ अदत्तादान
४ मैथुन
५ परिग्रह

पांच इन्द्रिय—

- १ श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति
 - २ चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति
 - ३ घाणेन्द्रिय प्रवृत्ति
 - ४ रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति
 - ५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

पाँच आस्तव--

- १ मिथ्यात्व आस्त्रव
 - २ अविरति आस्त्रव
 - ३ प्रमाद आस्त्रव
 - ४ कपाय आस्त्रव
 - ५ अशेष योग आस्त्रव

तीन योग—

- १ मन प्रवृत्ति
 - २ वचन प्रवृत्ति
 - ३ काय प्रवृत्ति

दो अयतना—

- १ भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना
 २ सूचि कुशाग्र मात्र, अयतना से लेना,
 रखना ।

व्याख्या

जिन कारणों के द्वारा आत्मा में कर्म मल आता है, वे कारण आस्त्रव कहलाते हैं। जीव रूप तालाब में, कर्म-रज रूप जल, हिंसा, असत्य आदि आस्त्रव द्वारा रूप नाली से आता रहता है। आस्त्रव से आत्मा भलिन बनता है क्योंकि आस्त्रव से कर्मों का निरन्तर सञ्चय होता रहता है।

हिंसा करना, भूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और परिग्रह का सचय करना—ये पाँच अवृत्त रूप आत्मव हैं।

पाँच इन्द्रियों को यदि वश में नहीं रखा जाता, उनका निग्रह नहीं किया जाता, उन पर समय का अकुश नहीं रखा जाता, यदि वे खुली छोड़ दी जाती हैं, तो वे कमंवन्व में निमित्त होने से आस्थावरूप हैं।

विपरीत श्रद्धान्, अविरति, (श्रसयम), प्रमाद, कपाय और
अड़ाभ मोग—ये पाचो आस्त्रव रूप हैं।

मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति भी ग्रासक रूप है।
कर्म बन्धन का कारण है।

रजोहरण, पात्र आदि भाण्डोपकरण और कुश-तृण,

सूचि = सूई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक से रखी जाती है, तो यह भी आस्तब है।

इन बीस कारणों से आत्मा कर्मों का सचय करता है, अत ये आत्मव है। आत्मव ससार का कारण है। इससे ससार की वृद्धि होती है।

सवर के बीस भेद

पाच व्रत—

- १ प्राणातिपात विरमण
 - २ मृपावाद विरमण
 - ३ अदत्तादान विरमण
 - ४ अव्रह्मचर्य विरमण
 - ५ परिग्रह विरमण

पाँच इन्द्रिय-

- १ श्रोत्रेन्द्रिय नियन्त्रण
 - २ चक्षुरन्द्रिय नियन्त्रण
 - ३ धारणेन्द्रिय नियन्त्रण
 - ४ रसनेन्द्रिय नियन्त्रण
 - ५ स्पर्शनेन्द्रिय नियन्त्रण

כְּבָשָׂר וְעַמְלֵךְ כְּבָשָׂר וְעַמְלֵךְ כְּבָשָׂר וְעַמְלֵךְ כְּבָשָׂר וְעַמְלֵךְ

पाँच सवर—

- | | |
|---|---------------|
| १ | सम्यक्त्व सवर |
| २ | व्रत सवर |
| ३ | अप्रमाद सवर |
| ४ | अकपाय सवर |
| ५ | शुभयोग सवर |

तोन योग—

- १ मनो निग्रह
२ वचन निग्रह
३ काय निग्रह

दो यत्तना—

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना,
रखना।

- २ मूर्चि कुश तना
लेना,

व्याख्या

आस्त्रव का निरोध सवर है।
है। सवर का अर्थ है, संवरण अत
आस्त्रव को रोका जाता है, वे सवर

जीव रूप तालाव में, कर्म-रज
रूप डाट के द्वारा रोकना, उसे सब

जहाँ शुद्ध एवं निर्मल वनता है। क्योंकि सबर की साधना से कर्म मल आत्मा में नहीं आ पाता।

हिसा से विरति, अमत्य से विरति, चौरी से विरति, अन्नहार्चर्य से विरात और परिग्रह से विरति—ये पाँच व्रत रूप सबर हैं। सबर धर्म का कारण है।

पाँच इन्द्रियों का निग्रह करना, उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोकना—यह पाँच इन्द्रियों का निरोधरूप सबर है। निग्रहीत इन्द्रिय सबररूप है।

यथार्थ शब्दान्, विरति (व्रत), अप्रमाद, अकपाय और शुभ योग—ये पाँच सबर हैं। क्योंकि इनसे आत्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन-निरोध और काय-सयम—ये तीनों भी सबर रूप हैं। इन तीनों योगों का शुभत्व सबर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आक्षव है। भले ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्लव है और अशुभ योग पापास्लव। यहाँ शुभ योग को जो संबर कहा है, वह अशुभ से निवृत्ति-रूप है। अतः शुभ की शुद्धांश में लक्षणा है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डोपकरण तथा सूई आदि श्रन्य किसी भी वस्तु को यतना से लेना और यनना से रखना—यह भी सबर है।

इन बीम कारणों से आत्मा आक्षव को रोकता है। अतः ये संबर हैं। सबर मोक्ष का कारण हैं। इसकी शुद्ध साधना से संसार के बन्धन कट जाते हैं।

निर्जरा तत्त्व के बारह मेद

- | | | |
|----|-------------|--|
| १ | अनशन | तप (उपवास आदि) |
| २ | ऊनोदरी | तप (भूख से कम खाना) |
| ३ | भिक्षाचरी | तप (निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना) |
| ४ | रसपरित्याग | तप (सुस्वादु भोजन का त्याग) |
| ५ | कायक्लेश | तप (वीरासन आदि करना) |
| ६ | प्रतिसलीनता | तप (एकान्त शय्यासन) |
| ७ | प्रायशिच्छत | तप (दोपो की आलोचनादि के द्वारा शुद्धि) |
| ८ | विनय | तप (गुरु आदि की भक्ति) |
| ९ | वैयाकृत्य | तप (आचार्य आदि की सेवा) |
| १० | स्वाध्याय | तप (शास्त्र वाचनादि) |
| ११ | ध्यान | तप (मन की एकाग्रता) |
| १२ | व्युत्सर्ग | तप (शरीर के व्यापार आदि का त्याग) |

व्याख्या

कर्म-वर्गणा का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना, निर्जरा है। जीव रूप वस्त्र को कर्म रूप मल लगा हुआ है। ज्ञान रूप जल और तप रूप साबुन से उसको शुद्ध किया जाता है। यह निर्जरा तत्व को समझने के लिए एक रूपक है।

निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम और अकाम । सवर-पूर्वक निर्जरा सकाम है, और विना विवेक के, विना सयम के जो कष्ट सहन किया जाता है, वह अकाम निर्जरा है ।

बद्ध कर्मों का क्षय तप से होता है। अतः निर्जरा की व्याख्या करते हुए प्रस्तुत वोल में अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायङ्गिक्त आदि छह प्रकार का आभ्यन्तर तप वताया गया है। यह तप कर्म-निर्जरा का हेतु है, कारण है। कारण में कार्य का उपचार करने से यहाँ पर तप को निर्जरा कहा गया है।

कर्म परमाणुओं का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निर्जरा है, और सर्वथा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है। देश मुक्ति निर्जरा और सर्व-मुक्ति मोक्ष है।

बन्ध तत्त्व के चार भेद

- १ प्रकृति वन्ध
२ स्थिति वन्ध
३ अनुभाग वन्ध
४ प्रदेश वन्ध

व्याख्या

कर्म-वर्गणा और आत्मा का अन्योऽन्यानुप्रवेश रूप जो परस्पर मम्बन्ध है, वह वन्ध कहाता है। कपाय और योग से जीव कर्म-पुद्गलों को घ्रहण करता है। नौर और क्षीर की तरह अथवा अग्नि और लौह पिण्ड की तरह कर्म-पुद्गल और आत्म-

प्रदेशों का जो एकीभाव है, उसे बन्ध कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर धूल में लेटता है, तो धूल उसके शरीर के चिपक जाती है। इसी प्रकार कषाय और योग से आत्म-प्रदेश में जब कम्पन होता है, तब आत्मा के साथ कर्म का बन्ध होता है। बन्ध तत्व के चार मेद हैं—

प्रकृति वन्ध—जीव के द्वारा प्रहण किए हुए कर्म पुदगल में ज्ञानावरणादि रूप भिन्न-भिन्न स्वभाव का अर्थात् शक्ति का पैदा होना ।

स्थिति वन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्दंगल में श्रमुक काल तक अपने स्वभाव का परिव्याग न करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल मर्यादा ।

अनुभाव वन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल में
तंत्र एवं मन्द फल देने की शक्ति। इसको अनुभाव वन्ध और
रस वन्ध भी कहते हैं।

प्रदेश बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गल के परमाणुओं का कम या अधिक होना अर्थात् जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्ध का सम्बन्ध होना ।

इन चार बन्धों में से प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग से होता है, और स्थिति-बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कपाय से होता है।

कर्म वन्ध के पांच हेतु हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय और योग। परन्तु मुख्य दो हैं—कपाय और योग।

मोक्ष तत्त्व के चार मेद

- | | |
|----------------|------------------|
| १ सम्यग् ज्ञान | ३ सम्यक् चारित्र |
| २ सम्यग् दर्शन | ४ सम्यक् तप |

व्याख्या

नव तत्त्वो में यह अन्तिम तत्व है। संवर और निर्जरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बन्ध के कारणों का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म-विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उस सर्वथा और सर्वदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म-गुणों का पूर्ण विकास ही वस्तुत मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकार्थक शब्द हैं। कर्म-वद्ध आत्मा का कर्म-मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा को एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एवं प्रकार नहीं होते। इसीलिए प्रस्तुत में मोक्ष तत्व के भेद बताने हुए उसकी प्राप्ति के चार साधन बताए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र में कहे गए हैं—मम्यग्रदर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप । जीव इन माध्यनों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गगन है। वह जो अधोगमन और तिर्यंग गमन करता है, उसमे जीव के कर्म कारण हैं। जैसे लेप-सहित तुम्हा जल में नीचे बैठ जाना है, परन्तु उस पर से मिट्टी

का लेप हट जाने से वही तुम्बा ऊपर अर्थात् जल की सतह पर आ जाता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। कर्म सहित आत्मा नीचे अधोगति में जाता है, और कर्म-रहित होने पर वही आत्मा अपनी सहज स्वभाव गति से मोक्ष पा लेता है।

एक बार जब आत्मा मुक्त हो जाता है, तो फिर वह कभी संसार में नहीं आता। क्योंकि मुक्त आत्मा में संसार का कारण ही नहीं रहता। जैसे दम्भ बीज को कितना भी पानी दिया जाए, कितनी भी उर्वर भूमि में बोया जाए, पर वह कभी अकुरित न नी हो सकता, वैसे ही जिस आत्मा में से बन्ध और बन्ध के कारणों का अभाव हो गया है, जो मुक्त हो गया है, वह फिर कभी संसार में नहीं आता।

जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता है, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, उनको भव्य कहते हैं। जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता नहीं, वे अभव्य हैं।

नव तत्त्वों में मुख्य तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सभी तत्त्व जीव और अजीव की पर्याय-विशेष ही हैं। उनका अपना पदार्थ रूप से स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं।

जिसमें चेतना है, वह जीव है, और जिसमें चेतना नहीं, वह अजीव है। ये दोनों स्वतन्त्र तत्त्व हैं।

पुण्य और पाप का समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। क्योंकि पुण्य और पाप पुद्गल रूप हैं। पुण्य गुभ पुद्गल और पाप अशुभ पुद्गल हैं।

କେବେଳାକୁ ପାରିବାରିକ ଦ୍ୱାରା ନିର୍ମିତ ଏକ ପାରିବାରିକ ଦ୍ୱାରା ନିର୍ମିତ

अथवा इन दोनों का अन्तर्भुवि आस्त्रव और वन्ध में भी किया जा सकता है। शुभ आस्त्रव और अशुभ आस्त्रव, तथा शुभ वन्ध, और अशुभ वन्ध। इनमें शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है।

आस्त्र और वन्धु तत्त्व तो स्पष्ट ही पुढ़गल हैं, पुढ़गल की पर्याय विशेष ही हैं। अत इनका समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। इस प्रकार पुण्य और पाप, आस्त्र और वन्धु-ये चार तत्त्व अजीव तत्त्व में आ जाते हैं।

मंवर निर्जरा और मोक्ष—ये तीनों जीव की ही पर्याय-विशेष हैं। सबर जीव की आस्तव-निरोध रूप शुद्धि है। निर्जरा भी अशत कर्म-क्षय रूप, एक प्रकार की शुद्धि ही है, और मोक्ष तो जीव की पूर्ण शुद्धि का ही नाम है। अत. सबर, निर्जरा और मोक्ष का समावेश जीव तत्त्व में हो जाता है।

अतः मक्षेप मे दो ही तत्त्व हैं—जीव और अजीव। शेष इन दोनों का ही विस्तार है।

इन नव तत्त्वों को ज्ञेय, उपादेय और हेय इन तीन भागों में भी विभक्त किया जा सकता है।

जीव और अजीव ज्ञेय हैं। पाप, आत्मव और वन्धु हेय है। पुण्य कथचित् हेय और कथचित् उपादेय है। सवर, निंजंरा तथा मोक्ष उपादेय हैं। जेय वह है, जो जानने के योग्य है। उपादेय वह है, जो भ्रष्ट करने के योग्य है। हेय वह है, जो छोड़ने के योग्य है।



94

बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा	५ ज्ञान आत्मा
२ कपाय आत्मा	६ दर्शन आत्मा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आत्मा	८ वीर्य आत्मा

व्याख्या

आत्मा एक शाश्वत तत्त्व है। वह अतीत में भी था, वर्तमान में भी है, और भविष्य में भी रहेगा। उसकी न उत्पत्ति है, और न उसका विनाश। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता, कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता हो नहीं। द्रव्य से नित्य होकर भी आत्मा पर्याय से अनित्य है, परिवर्तनशील है। जीव के परिणामों का कोई अन्त नहीं है। प्रस्तुत बोल में मुख्यतः आत्मापो की आठ स्थिति का वर्णन है।

द्रव्य आत्मा—आत्मा असख्यान प्रदेशों का समुदाय है। आत्मा अखण्ड है, वह कोई असख्य प्रदेशों में समुक्त रूप में निर्भिन्न है। प्रदेश कल्पनामात्र बुद्धि-परिकल्पित है। ये प्रदेश से पृथक्तया विभाजित नहीं किए जा सकते।

कपाय आत्मा—कपाय चार हैं—कपाय युक्त आत्मा को कपाय आ

क्षीण कपाय आत्माओं को छोड़कर शेष समस्त ससारी जीवों में
यह आत्मा होती है।

योग आत्मा—योग मन, वचन एवं काय का व्यापार है। योग-
युक्त आत्मा को योग आत्मा कहते हैं। अयोगी केवली और सिद्धों
में यह आत्मा नहीं होती। शेष सभी जीव योग वाले हैं।

उपयोग आत्मा—उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन। उपयोग-
युक्त आत्मा को उपयोग आत्मा कहते हैं। उपयोग आत्मा सिद्ध
और समारो भी जीवों में होती है। क्योंकि उपयोग आत्मा का
लक्षण है। अतः उपयोग-शून्य कोई आत्मा नहीं हो सकती।

ज्ञान आत्मा—ज्ञान आत्मा का निज गुण है। ज्ञान-युक्त आत्मा
को ज्ञान आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवों में है। परन्तु
जब ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान करें, तब यह आत्मा केवल सम्यग्दृष्टि
जीवों में रहेगी। क्योंकि मिथ्या दृष्टि में ज्ञान नहीं, अज्ञान होता है।

दर्शन आत्मा—दर्शन अर्थात् सामान्य वोध। दर्शन-युक्त
आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवों में
होता है। अयवा सम्यग्दर्शन रूप आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवों में
ही होती है।

चारित्र आत्मा—चारित्र अर्थात् अशुभ से निवृत्ति और शुभ में
प्रवृत्ति। चारित्र युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं। यह
आत्मा विरति-सम्पन्न जीवों में होता है।

वीर्य आत्मा—वीर्य अर्थात् जीव की शक्ति-विशेष। वीर्य-युक्त
आत्मा को वीर्य आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवों में
होती है। अन्तर केवल इतना ही है, कि समारी आत्माओं का
वीर्य, सकरण अर्थात् क्रियारूप वीर्य है, और सिद्ध आत्माओं का
वीर्य, लक्ष्य अर्थात् शक्ति रूप वीर्य है।



25

वोल सोलहवाँ : दण्डक चौधीस
सात नरक का एक दण्डक—

१	रत्नप्रभा	५	धूमप्रभा
२	शर्करा प्रभा	६	तम. प्रभा
३	बालुका प्रभा	७	महातम प्रभा
४	पड्डु प्रभा		

दश भवन-पति के दश दण्डक—

१	असुरकुमार	६	द्वीपकुमार
२	नागकुमार	७	उदधिकुमार
३	सुपर्णकुमार	८	दिशाकुमार
४	विद्युत्कुमार	९	पवनकुमार
५	अग्निकुमार	१०	स्तनितकुमार

पाच स्थावर के पाच दण्डक—

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

- १ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरन्द्रिय

अन्तिम पांच दण्डक—

- १ तिर्यञ्च पञ्चन्द्रिय का एक दण्डक
 - १ मनुष्य का एक दण्डक
 - १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
 - १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
 - १ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का सचय करता रहता है। फिर उन शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियों में पारब्रह्मण करता है। अत जहाँ जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस बोल में २४ भागों में विभक्त करके उन स्थानों का नाम दण्डक रखा दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं।



96

बोल सोलहवाँ : दण्डक चौरीस

सात नरक का एक दण्डक—

१	रत्नप्रभा	५	धूमप्रभा
२	शर्करा प्रभा	६	तम प्रभा
३	बालुका प्रभा	७	महातम. प्रभा
४	पङ्कज प्रभा		

दश भवन-पति के दश दण्डक—

१	असुरकुमार	६	द्वीपकुमार
२	नागकुमार	७	उदधिकुमार
३	सुपर्णकुमार	८	दिशाकुमार
४	विद्युत्कुमार	९	पवनकुमार
५	अग्निकुमार	१०	स्तनितकुमार

पांच स्थावर के पांच दण्डक—

- १ पृथ्वी काय
- २ अप् काय
- ३ तेजस् काय
- ४ वायुकाय
- ५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

- १ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक—

- १ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
 - १ मनुष्य का एक दण्डक
 - १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
 - १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
 - १ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का संचय करता रहता है। फिर उन शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियों में पारब्रह्मण करता है। अत जहाँ जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस लोल में २४ भागों में विभक्त करके उन स्थानों का नाम दण्डक रखा दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यक्ष गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं।



۲۹

बील सतरहवाँ : लेश्या छह

१	कृष्ण लेश्या	४	तेजो लेश्या
२	नील लेश्या	५	पद्म लेश्या
३	कापोत लेश्या	६	शुक्ल लेश्या

व्याख्या

जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं। अथवा जिस परिणाम से कर्मों का आत्मा के साथ मम्बन्ध हो, उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या के दो भेद हैं - भाव और द्रव्य। भाव लेश्या विचार रूप और द्रव्य लेश्या पुदगल रूप होती है।

अथवा लेश्या के दो भेद हैं - धर्म लेश्या और अधर्म लेश्या । पहले को तीन अधर्म लेश्या और अगली तीन धर्म लेश्या । इनको अशुभ लेश्या और शुभ लेश्या भी कहते हैं ।

कृष्ण लेश्या —

अतिरीद्. सदा क्रोधी, मत्सरी धर्म-वर्जितः ।
निर्दयी वैर-समुक्त, कृष्ण-लेश्याऽधिको नर ॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त शूर होते हैं, वह क्रोधी होता है, वह ईर्ष्यालु होता है, उसका जीवन धर्म-शून्य होता है, वह दया रहित होता है, और उसके मन में सदा वैर-विरोध की भावना रहती है।

नील लंश्या—

अलसो मन्द-बुद्धिश्च, श्वी-लुध पर-वश्चक ।
कातरश्च सदा मानी, नील-लेष्याऽधिनो नर ॥

नील लेश्या वाला जीव आलसी, मन्द बुद्धि वाला, कामुक, मायावी, डरपोक और सदा अभिमानी होता है।

कापोत लेश्या—

शोकाकुलः सदा रुष्ट, पर निदात्मशंसक' ।
सग्रामे प्रार्थते मृत्यु; कापोतलेश्याधिकोनर् ॥

कापोत लेश्या वाला जीव शोक से व्याकुल रहता है, सदा क्रोध में भरा रहता है। पर-निन्दा और स्व-प्रशासा किया करता है, और सम्राम में जाकर कायर बन जाता है, मृत्यु चाहता रहता है।

तेजां लेश्या—

विद्यावान् करुणा-युक्तः, कार्याङ्कार्य विचारक ।
लाभाङ्कलाभे सदा प्रीत, तेजोलेश्याधिको नर ॥

तेजोलेश्या वाला जीव विद्या-प्रेमी होता है, करुणाशील होता है, कर्तव्य और अकर्तव्य में विवेक रखता है, और लाभ तथा ग्रलाभ में सदा प्रसन्न रहता है।

पद्म लेश्या—

क्षमावान् निरतस्त्यागे, गुरु-देवेषु भक्तिमान् ।
शुद्ध-वित्त सदाऽऽनन्दी; पदम्-लेश्याधिको नर ॥

पदम लेश्या वाला जीव क्षमाशील और त्याग-निरत होता है, देव और गुरु की भक्ति करता है, उसका चित्त मदा प्रसन्न रहता है, और वह सदा प्रमुदित रहता है।

शक्ल लेख्या—

राग-द्वेष-विनिमुक्त , गोक-निन्दा-विवर्जित ।
परमात्मभावसम्पन्नः, शुक्ल-लेश्याधिको नर. ॥

शुक्ल लेश्या वाला जीव राग और द्वेष से रहित होता है। अथवा मन्द राग और मन्द द्वेष वाला होता है। वह शोक और निन्दा के वेग से भी परे रहता है। और परम शुक्ल लेश्या वाला अन्ततः परमात्म-दग्धा को प्राप्त कर लेता है। यह आत्मा परम शुद्ध आत्मा होता है।



三

चौल अठारहवाँ : हाइ तीन

- १ सम्यग्दृष्टि
२ मिथ्यादृष्टि
३ मिश्रदृष्टि

व्याख्या

यहाँ पर दृष्टि का अर्ध है—दर्जन। ससार में जितने भी जीव हैं, उनमें इन तीन दृष्टियों में से एक न एक दृष्टि अवश्य मिलती है। ये दृष्टियाँ समुच्चयरूप में चारों गतियों के जीवों में उपलब्ध होती हैं।

॥३३३४३५३३६३७३८३९३०३१०३५४३६६६६६६६६३३३

सम्यग् दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से अथवा क्षयोपशम से आत्मा में जो एक आत्मानुलक्षी शुद्ध पारणाम उत्पन्न होता है, उसे सम्यग् दृष्टि कहते हैं।

मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व में हनीय कर्म के उदय से जीव में जब अदेव में देव बुद्धि, अधर्म में धर्म बुद्धि और अगुरु में गुरुबुद्धि हो जाती है, तब उस दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं।

मिश्र दृष्टि—मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में जो सत्यामत्य मिश्रित दोलायमान स्थिति पैदा होती है, उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि में जीव न एकान्त सत्योन्मुख होता है, और न एकान्त असत्योन्मुख। किन्तु सत्य और असत्य से विलक्षण एक भिन्न मिश्रित-सी अवस्था होती है।



१६

बोल उच्चीसवाँ : ध्यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुक्ल ध्यान

व्याख्या

चित्त को एकाग्र करना ध्यान है। अपनी चिन्तन-धारा को ग्रनेक विषयो से समेटकर किसी एक वस्तु या विषय पर एकाग्र कर लेना, स्थिर कर लेना हो ध्यान है।

ध्यान चार प्रकार का है। पहले दो सासार के कारण हैं। अत वे हेय हैं, त्याज्य हैं। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अत. वे उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसको त्रिपुटी कहते हैं। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते हैं।

ध्यान के दो भेद हैं—ग्रनुभ और गुभ। पहले के दो ध्यान ग्रनुभ हैं, पिछले दो गुभ हैं।

आर्त ध्यान— मनोज्ञ एव प्रिय वस्तु के वियोग में और ग्रम-
नोज्ञ एवं अप्रिय वस्तु के संयोग में, चित्त में जो एक प्रकार की
अनवरत एकाग्र चिन्तना होती है, उसको आर्तध्यान कहते हैं।

रौद्र ध्यान—हिंसा में, असत्य में, चोरी में और धन आदि के ममत्वभाव में, मन को एकाग्र करना, मन को जोड़ना, रौद्र ध्यान है। इसमें परिणाम अत्यन्त क्रूर होते हैं। इसमें, जीव के रुद्र अर्थात् भयंकर एव निर्दय भाव रहते हैं, अत इस को रौद्र ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमें श्रुत और चारित्र रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते हैं। सूत्रार्थ का चिन्तन करना, व्रतों का विचार करना, तथा समार की असारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

शुक्ल ध्यान—जो ध्यान कर्म-मल को तीव्र गति से दूर करता है, वह शुक्ल ध्यान है। अथवा पर अवलम्बन के विना निर्मल आत्म-स्वरूप का अखण्ड-चिन्तन शुक्ल ध्यान है।



३०

बोल वीसवाँ पद्मव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
 - २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
 - ३ काल से आदि-अन्त रहित
 - ४ भाव से वर्ण-गत्व-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव,
शाश्वत, लोक-व्यापी
 - ५ ग्रन्थ से चलन ग्रन्थ, जल मे मछली का हृष्टान्त

अधर्मस्तिकाय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
 - २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
 - ३ काल से आदि-अन्त रहित
 - ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव,

५ गुण से स्थिर गुण, श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशस्ति काय के पांच भेद

- १ द्रव्य से एक
 - २ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
 - ३ काल से आदि-अन्त-रहित
 - ४ भाव से वर्ण-गत्थ-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव,
शाश्वत, सर्व-व्यापी
 - ५ गुण से अवकाश-दान गुण, दूध मे वताशे का
दृष्टान्त ।

काल द्रव्य के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
 - २ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण
 - ३ काल से आदि-अन्त-रहित
 - ४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-रहित, अस्पी, शास्वत,
अढाई द्वीप वर्ती
 - ५ गुण से वर्तना गुण, नये को पुराना करे,
नये पुराने कपड़े का हृष्टान्त

जीवास्तिकाय के पांच भेद

- १ द्रव्य से अनन्त
 - २ क्षेत्र.से लोक-प्रमाण
 - ३ काल से आदि-अन्त-रहित
 - ४ भाव से वर्ण-ग्रंथ-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, जीव,
शाश्वत, लोकवर्ती
 - ५ गुण से उपयोग गुण, चन्द्र की कला का हृष्टान्त

पृथग्लास्तिकाथ के पाँच भेद

- १ द्रव्य से अनन्त
 - २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
 - ३ काल से आदि-अन्त-रहित,
 - ४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-सहित, रूपी, अजीब,
शाश्वत, लोकवर्ती
 - ५ गुण से पूरण-गलन गुण, मिलते बिखरते वादल का
दृष्टान्त

व्याख्या

प्रस्तुत बोल मे पड़ द्रव्य का निरूपण किया गया है। द्रव्य, पदार्थ और वस्तु—ये एकार्थवाची शब्द हैं। जिसमें गुण और पर्याय रहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य का सहभावी धर्म गुण

कहलाता है, और द्रव्य का क्रमभावी वर्म पर्यायि कहलाता है। द्रव्य, गुण और पर्यायि तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं। द्रव्य के बिना गुण और पर्यायि नहीं, और गुण एवं पर्यायि के बिना द्रव्य नहीं। गुण नित्य होता है, और पर्यायि क्षणिक।

चेतना-शून्य तत्त्व को अजीव कहते हैं। अजीव के पाँच भेद हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

धर्म—गति-शील तत्त्वों की गति से सहायक जो तत्त्व, वह धर्म है। गति-शक्ति जीव और पुद्गल की अपनी है, परन्तु धर्म उसमें निमित्त कारण, सहकारी कारण बन जाता है। धर्म के बिना जीव और पुद्गल स्वभावत गति-शील होते हुए भी गति नहीं कर सकते। जैसे मछली में तैरने की शक्ति होने पर भी वह जल के बिना नहीं तैर सकती।

अधर्म—स्थितिशील तत्त्वों की स्थिति में सहायक जो तत्त्व, वह अधर्म है। जीव और पुद्गल दोनों में स्थित होने का अपना स्वभाव है, पर उसमें निमित्त अधर्म है। जैसे पथिक के लिए वृक्षों की छाया। ठहरता तो पथिक स्वयं ही है, परन्तु छाया उसमें निमित्त कारण, सहकारी कारण वन जाती है। ठीक इसी प्रकार जीव एवं पुद्गल में ठहरने का स्वभाव है, परन्तु अधर्म उसमें निमित्त है। विना इसके कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं हो सकता।

आकाश—जो श्रवकाश देता है, आश्रय देता है, वह आकाश है। आकाश सबका आधार है, शेष सभी द्रव्य आधेय हैं। व्यवहार हृषि से त्रम एव स्थावर जीवों का आधार पृथ्वी, पृथ्वी का आधार जल, जल का आधार वायु और वायु का आधार आकाश है, आकाश का अन्य कोई आधार नहीं। वह आप ही अपना आधार है।

סבָא כְּפָר אַנְגָלִים בְּבֵית כֹּהֶן גָּדוֹלָה

क्योंकि उससे बड़ा कोई पदार्थ नहीं। तत्वत आकाश ही पृथ्वी जल, वायु, आदि सभी जीव-अजीव को अपने में अवकाश देता है, आश्रय देता है, जैसे दूध से भरे कटोरे में बताशा। जिस प्रकार दूध में बताशा समा जाता है, वैसे ही सब पदार्थ आकाश में समाये हुए हैं।

आकाश के दो भेद है—लोकाकाश और अलोकाकाश । जहाँ तक धर्म और अधर्म आदि हैं, वह लोकाकाश, शेष अलोकाकाश ।

काल—काल अर्थात् समय । जो पुरानी वस्तु को नयी और नयी को पुरानी करता है, वह काल है । समय, पल, घड़ी, दिन और रात-ये सब काल के कार्य हैं । पदार्थों की जो प्रतिक्षण पर्याय बदल रही है, उसका निमित्त अर्थात् महकारी कारण काल है ।

जीव—चैतनामय तत्व जीव है। उपयोग जीव का लक्षण है। यह लक्षण ससारी जीव और मुक्त जीव सभी में घटित होता है। जीव कभी उपयोग—शून्य नहीं हो सकता। जीव के मुख्य रूप में दो भेद हैं—ससारी और मुक्त। समग्र चैतन्य तत्व का इन दो भेदों में समावेश हो जाता है।

पुदगल—जिसमें पूरण, अर्थात् मिलन और गलन अर्थात् पृथक् भवन का स्वभाव है, वह पुदगल है। जो मिलता है, विछुड़ता है, वह पुदगल है। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श—ये चार गुण हों, वह पुदगल है। 'पुद' और 'गल' इन दो धातुओं के संयोग से पुदगल शब्द बना है। जिसका अर्थ है सश्लेष और विश्लेष। ईंट, पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि—ये सब पुदगल हैं।

इन पड़ द्रव्यों में एक काल को छोड़ कर शेष सभी द्रव्य अस्ति-काय-रूप हैं। अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह।

ये पांचों द्रव्य, प्रदेश-समूहात्मक हैं। अतः ये अस्तिकाय कहे जाते हैं। परन्तु काल के प्रदेश नहीं होते। अतः काल अस्तिकाय नहीं है। अस्तिकाय द्रव्य पाँच हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल।



२१

बोल इककीसवाँ : राशि दी

२ जीव राशि

२ अजीवराशि

१४८

राणि का अर्थ है—समूह। प्रस्तुत बोल में संसार की समस्त वस्तु—चेतन और अचेतन—दो समूहों में विभक्त हैं—जीव राशि और अजीव राशि। संसार में कोई वस्तु ऐसी शेष नहीं रह जाती, जो इन दो राशि में न आ सके। संसारी से लेकर सिद्ध तक, और सिद्ध से लेकर संसारी जीव तक, समस्त चेतनामय शक्तियों का समावेश हो जाता है—जीव राशि में। धर्म, अधर्म, आदि समस्त जड़ तत्त्वों का समावेश हो जाता है—अजीव राशि में।

जीवराशि—जो चेतना-शक्ति से युक्त हो, वह जीव है। जीवों की राशि को, जीवों के समुदाय को जीव राशि कहते हैं। 'जीव' के दो भैद हैं—ब्रह्म और मुक्त। जीव राशि में दोनों प्रकार के जीवों का समावेश हो जाता है।

FFFF9999 FFFFFFEEEEE8888FFEEEEE FFFFFEEEEE8888FFEEEEE

अजीवराशि—चेतना रहित जितने भी तत्त्व है, उनके समुदाय को अजीव राशि कहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पृथगल—ये सब अजीव राशि में आ जाते हैं।



२२

बोल वाईसवाँ : श्रावक के वारह व्रत

पाँच अणुव्रत-

- १ अहिंसा अणुव्रत
 - २ सत्य अणुव्रत
 - ३ अस्तेय अणुव्रत
 - ४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत
 - ५ अपरिग्रह अणुव्रत

तीनगुण व्रत-

- १ दिशा परिमाण व्रत
 - २ भोगोपभोग परिमाण व्रत
 - ३ अनर्थदण्ड विरमण व्रत

चारशिक्षा व्रत-

- १ सामायिक व्रत
२ देशावकाशिक व्रत

- ३ पौष्ठ व्रत
४ अतिथि-सविभाग व्रत

व्याख्या

शास्त्र में सीमितरूप में पाले जाने वाले अहिंसा आदि धर्म को 'श्रावक धर्म' कहा है। गृहस्थ धर्म का अर्थात् गृहस्थोचित सम्यक् आचार का पालन करने वाला पुरुष 'श्रावक' और श्री 'श्राविका' कहलाती है।

श्रावक शब्द श्रवण अर्थ वाले 'श्रु' धातु पर से बना है। जो श्रवण करे, अर्थात् जो आत्म-कल्याण के प्रशस्त मार्ग को सुने, वे श्रावक और श्राविका कहे जाते हैं। इनको -उपासक और उपासिका भी शाख में कहा गया है।

ਪੰਚ ਅਣੁਵਤ—

हिंसा, असत्य, स्तेय, अवृत्त्युचर्य और परिग्रह—ये प्रभिद्ध पाप हैं। मावक का कर्तव्य है कि वह इन पाँच पापों से बचकर चले। परन्तु गृहस्थ साधक इन पाँच पापों का सर्वथा परित्याग नहीं कर सकता है।

वह स्थूल हिंसा का त्याग कर सकता है, सूक्ष्म हिंसा का नहीं। पाँच स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग वह नहीं कर सकता। ऋस जीवों में भी वह निरपराध जीव की हिंसा का त्याग कर सकता है, सापराध की हिंसा का नहीं। अतः उसका अर्हिंसा ऋत, साधु के महाऋत को अपेक्षा अणुव्रत अर्थात् छोटा ऋत कहाता है।

इसी प्रकार वह श्रावक स्थूल असत्य को, स्थूल स्तेय को, स्थूल अब्रह्म को और स्थूल परिग्रह को छोड़ सकता है; सूक्ष्म का त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि वैसा करने पर उसका गृहस्थ जीवन चल मकना कठिन है। चतुर्थ व्रत के रूप में यदि वह पुरुष है, तो स्व-दार-सन्तोष-व्रत और यदि वह नारी है, तो स्व-पति-मन्तोष-व्रत ग्रहण करता है। पञ्चम व्रत के रूप में वह-अपने परिग्रह का परिमाण निर्धारित करता है।

तीन गुणवत्—गुण-व्रत का अर्थ है—अहिंसा आदि पाँच मूल व्रतों को पुष्ट करने वाले, और उनमें अभिवृद्धि करने वाले नियम।

चार दिशा, चार विदिशा और ऊर्ध्वदिशा तथा अधोदिशा—
इन दश दिशाओं का परिमाण निर्धारित करना, ताकि सीमा से
बाहर, मर्यादा से बाहर गमन और आगमन न हो । यह दिशा
परिमाण गुण व्रत है, इस में क्षेत्र की मर्यादा की जाती है ।

उपभोग अर्थात् एक बार भोग के काम में आने वाली खाने-पीने आदि की वस्तु और परिभोग अर्थात् बार-बार भोग के काम में आने वाली पहनने-ग्रोहने आदि की वस्तु—इनकी मर्यादा करना। जैसे आनन्द श्रावक ने छब्बीस बोल की मर्यादा की थी। यह उपभोग परिभोग परिमाण गुण व्रत है।

श्रावक-प्रयोजन के लिए तो हिसा आदि करता है, परन्तु विना प्रयोजन के हिसा आदि का उसको परित्याग होता है। अत. अनर्थदण्ड का, अथवा विना प्रयोजन के हिसा आदि का त्याग, अनर्थदण्ड-विरमण गुणवत्त है।

चार शिक्षा व्रत—

शिक्षा का अर्थ है, साधु-जीवन-का अभ्यास। धीरे-धीरे

साधु-जीवन योग्य सावना की ओर अग्रसर होना, इस शिक्षा व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

नित्य प्रति उभय काल मे सामायिक करना, सामायिक शिक्षा व्रत है। दिशान्वत मे जो क्षेत्र-मर्यादा की थी, उसको और अधिक सीमित करना, देशावकाशिक शिक्षा व्रत है। पर्व दिवसो मे पौष्टि व्रत एव दयाव्रत करना पौष्टि शिक्षा व्रत है। और द्वार पर आए साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि आदि अतिथि को सम्मान पूर्वक यथाशक्ति दान देना, अतिथि सविभाग शिक्षा व्रत है। ये चार शिक्षा व्रन हैं। इस प्रकार श्रावक के बारह व्रत हैं।



三三

बोल तेह्सवाँः साधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
 - २ सत्य महाव्रत
 - ३ अस्तेय महाव्रत
 - ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
 - ५ अपरिग्रह महाव्रत

व्याख्या

साधु को शास्त्र मे 'श्रमण' कहा गया है। अतः साधु-धर्म को 'श्रमण-धर्म' कहना उचित ही है। श्रावक धर्म से आगे की कोटि श्रमण-धर्म की है। साधु होने के लिए केवल बाह्य वेप बदल

॥६६७३७ ६६८३७३६६ ६६८७४७४७३७३७ ६६८७४३३७३७३७३७६६

लेना ही पर्याप्त नहीं है, वल्कि उसके लिए जीवन को ही बदलना पड़ता है। वाने के माथ वान भी बदलनी पड़ती है, तभी सच्ची साधुता प्राप्त होती है।

सप्ताह में पाँच महापाप हैं—हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), अब्रह्मचर्य और परिग्रह (आसक्ति) ।

साधु इन पाँचो महापापो का त्याग तीन करण और तीन योग से करता है। करण का अर्थ है—छृन, कारित और अनुमति। अर्थात् करना, कराना और अनुमोदन करना। योग का अर्थ है—मन, वचन और काय।

साधु इन पाँचो महापापो को न स्वर्य करता है, न दूसरो से करवाता है, और न करने वालो का अनुमोदन करता है—मन से, वचन से और काय से। अत. साधु के इन व्रतों को शास्त्र में महाव्रत कहा गया है।

महाव्रत का अर्थ है—बड़ी प्रतिज्ञा, महान प्रतिज्ञा, पूर्ण प्रतिज्ञा। उसमें किसी भी प्रकार की स्थूल एव सूक्ष्म की छूट नहीं होती।

साधु पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तेय, पूर्ण व्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह का परिपालन करता है। अत उसकी प्रतिज्ञा को महाव्रत कहना उचित ही है।



२४

बोल चौवीसवाँ : भंग ४८

अंक ११ भग नव—एक करण, एक योग से कथन—

- १ करूँ नहीं मन से
 - २ करूँ नहीं वचन से
 - ३ करूँ नहीं काय से
 - ४ कराऊँ नहीं मन से
 - ५ कराऊँ नहीं वचन से
 - ६ कराऊँ नहीं काय से
 - ७ अनुमोदूँ नहीं मन से
 - ८ अनुमोदूँ नहीं वचन से
 - ९ अनुमोदूँ नहीं काय से

अंक १२ भग नव—एक करण, दो योग से कथन—

- १ करूँ नहीं मन से, वचन से
 - २ करूँ नहीं मन से, काय से
 - ३ करूँ नहीं वचन से, काय से
 - ४ कराऊँ नहीं मन से, वचन से
 - ५ कराऊँ नहीं मन से, काय से

- ६ कराऊँ नहीं वचन से, काय से
 ७ अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से
 ८ अनुमोदूँ नहीं मन से, काय से
 ९ अनुमोदूँ नहीं वचन से, काय से

अक १३ भग तीन—एक करण, तीन योग से कथन—

- १ करूँ नहीं मन से, वचन से, कायं से
 २ कराऊँ नहीं मन से, वचन से, काय से
 ३ अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से काय से

अक २१ भग नव—दो करण, एक योग से कथन—

- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
२ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
५ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
६ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक २२ मग तव—दो करण, दो योग से कथन—

- १ करूँ नहीं कराऊँ नहीं मन से वचन से
२ करूँ नहीं कराऊँ नहीं मन से काय से
३ करूँ नहीं कराऊँ नहीं वचन से काय से
४ करूँ नहीं अनुमोदूँ नहीं मन से वचन से
५ वरूँ नहीं अनुमोदूँ नहीं मन से काय से
६ करूँ नहीं अनुमोदूँ नहीं वचन से काय से
७ कराऊँ नहीं अनुमोदूँ नहीं मन से वचन से
८ कराऊँ नहीं अनुमोदूँ नहीं मन से काय से
९ कराऊँ नहीं अनुमोदूँ नहीं वचन से काय से

अक २३ मग तीन—दो करण, तीन योग से कथन—

- १ करूँ नहीं कराऊँ नहीं मन से वचन से काय से
 २ करूँ नहीं अनुमोदूँ नहीं मन से वचन से कायसे
 ३ कराऊँ नहीं अनुमोदूँ नहीं मन से वचनसे कायसे

अक्ष ३१ भग तीन—तोन करण, एक योग से कथन—

- १ करूँ नहीं कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
 २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
 ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक्ष ३२ भंग तीन—तीन करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मनसे, वचनसे

२ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मनसे, कायसे

३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचनसे कायसे

अक ३३—भग एक-तीन करण, तीन योग से कथन—

करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन से, काय से।

सेरो-यन्त्र

अक ११ १२ १३ २१ २२ २३ ३१ ३२ ३३

भग त्रि वृत्ति अवृत्ति अवृत्ति अवृत्ति अवृत्ति अवृत्ति अवृत्ति अवृत्ति

करण १ १ १ २ २ २ ३ ३ ३

योग १ २ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ ३

सर्व भंग द १८ ३१ ३० दृष्टि ४२ ४५ ४३ ४६

५१ सेरी में से रुकने वाली सेरी क्रमशः

£ 15 27 15 36 54 27 54 59

व्याख्या।

आख्य में दो प्रकार की परिज्ञा अर्थात् बुद्धि कही कई है—
ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा। ज्ञपरिज्ञा से पदार्थों का स्वरूप
जाना जाता है, कि कौन पदाथ कैसा है ? हेय है या उपादेय ?
और प्रत्याख्यान परिज्ञा से हेय वस्तु का त्याग और उस की पद्धति
का विचार है। प्रस्तुत वोल में प्रत्याख्यान-परिज्ञा का स्वरूप
वताया है, कि हेय वस्तु का त्याग कैसे करना चाहिए ?

पाप का परित्याग जीवन की सोधारण घटना नहीं है, कि किसी हेय वस्तु को छोड़ दिया और वस त्याग हो गया। इस प्रकार के त्याग तो मिथ्यादृष्टि जीव भी करते रहते हैं। किन्तु वह त्याग प्रत्याख्यान कोटि मे नहीं आता। प्रत्याख्यान कोटि के लिए आवश्यक है, कि कृत, कारित और अनुमत तथेव मन, वचन और काय के स्वरूप का तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धों का गम्भीरता से विचार किया जाए। यही विचार प्रस्तुत बोल मे किया गया है।

भग का अर्थ है, विकल्प, प्रकार, एवं विभाग रूप रचना-विशेष। इस अर्थ के अनुसार प्रत्याख्यान के ४६ भग हैं। अन्तिम ३३ के अक का भग पूर्ण है, क्योंकि वह नवकोटि प्रत्याख्यान है। उसमें किसी भी प्रकार के अप्रत्याख्यान के अश की छूट नहीं है। शेष भग अपूर्ण है, अर्थात् उनमें किसी न किसी रूप में अप्रत्याख्यानाग की छूट रह जाती है।



२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पाँच

- १ सामायिक चारित्र
- २ छेदोपस्थापन चारित्र
- ३ परिहार विशुद्धि चारित्र
- ४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र
- ५ यथाख्यात चारित्र

व्याख्या

आत्मा को निज स्वरूप में स्थित रखने का प्रयत्न चारित्र है। चारित्र, विरति, संयम, और सवर ये सब एकार्थक शब्द हैं। चारित्र का अर्थ है—शुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। तत्त्वतः आक्षय के निरोध को चारित्र कहा जाता है।

शास्त्रीय भाषा में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से और कथोपगम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र कहते हैं। अथवा आत्मा का सावद्य योग से निवृत्त होकर निरवद्य योग में प्रवृत्त होना भी चारित्र कहा जाता है। चारित्र के सामायिक आदि पाँच मेद हैं।

सामायिक चारित्र—सामायिक अर्थात् सम-भाव। सम भाव की साधना को सामायिक चारित्र कहते हैं। अथवा सावद्य